विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ दिसम्बर—१९९७ अंक-१२

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७, श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०, श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० ए० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३. डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला वोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, वड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष वोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई वी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अंडकिमी कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.
१९५. श्री हरवंश लाल पहुडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९[illegible]. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष —१६ दिसम्बर—१९९७ अंक—१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

एक किसान ने सारा दिन गन्ने के खेत में पानी सींचने के बाद जाकर देखा कि खेत में बूँद भर भी पानी नहीं पहुँचा है; खेत में कुछ बड़े-बड़े बिल थे और सारा पानी उन बिलों में से होकर दूसरी ही ओर बह गया था। इसी प्रकार, जो व्यक्ति मन में विषय-वासना, मान-यश, सुख-सुविधा की आकांक्षा रखते हुए ईश्वर की उपासना करता है, वह यदि जीवन भर भी नियमित रूप से साधना करता रहे तो भी अन्त में यही देखता है कि उसकी सारी साधना उन वासनारूपी बिलों में से बाहर निकल गयी है और वह जैसा का तैसा ही रह गया है, तनिक भी प्रगति नहीं कर पाया है।

(२)

सन्तान नहीं होती इसलिए लोग आँसुओं की झड़ी लगा देते हैं, धन की प्राप्ति नहीं होती इसलिए वे कितना दुःख करते रहते हैं। किन्तु ऐसे लोग कितने हैं जो भगवान के दर्शन नहीं मिले इसलिए दुःखी होते और रोते हैं? जो सचमुच ही उन्हें चाहता है, उनके लिए रोता है, वह उन्हें अवश्य पाता है।

(३)

यदि दर्पण धूल से ढका हो तो उसमें चेहरा दिखाई नहीं देता। हृदय के शुद्ध होने पर भक्ति की प्राप्ति होती है। तभी भगवान् की कृपा से उनके दर्शन होते हैं। उनका नाम जपते हुये अपने देह और मन को शुद्ध बनाओ। उनका पावन नाम गुणगान गाते हुए अपनी जिह्वा को पवित्र करो।

माँ श्री शारदा-स्तोत्र

—डॉ० रमाकान्त पाठक
पूर्व कुलपति, ल० ना० मि० वि० वि० दरभंगा

(१)

या पृथ्वीव दयामयी तु सहने सर्वाश्रया धारिणी,
या दुर्गेव भयार्त्तिविघ्नहरणी दुर्वृत्त - संहारिणी,
या गंगेव पुनाति लोकमखिलं पापौघतापापहा,
सा नः पातु पुनातु भातु सततं श्रीरामकृष्णप्रिया।

(२)

या लक्ष्मीव सुदर्शना सपतिका गौरीव सिद्धासना,
माता शेषचराचरस्य सरला या शारदेवाक्षता,
नित्यं पत्यनुसारिणी जनकजा सीतेव या चापरा,
सर्वस्मै विदधातु मंगलमुदं सा ख्रिस्तमाता इव।

(३)

प्राणाह्लादनिनादसिन्धुसवना स्कन्दस्मिताभोज्ज्वला
या विश्रान्तिविधायिनी प्रणविनी विज्ञानकोषेश्वरी
विश्वप्रेमपयोधिजातकमला माता रसस्यन्दिनी
तामानन्दकरीं विमुक्तकवरीं वन्दे सदा शारदाम्।

भावार्थ—सबका भार उठाने में, सबकी करतूतों को क्षमा करने में और सबको आश्रय देने में जो पृथ्वी की भाँति दयामयी हैं; जो समग्र भय, व्याकुलता और विघ्नों को दूर करने में और दुष्टों का संहार करने में दुर्गा की तरह शक्तिशालिनी है; जो समस्त लोकों को पवित्र करने में और पाप ताप की बाढ़ रोकने में गंगा की भाँति अजस्र हैं; श्रीरामकृष्ण की वह प्रिया हमलोगों की रक्षा करें, हमें पवित्र करें और हमें निरन्तर भाती रहें।१।

जो लक्ष्मी की भाँति सुन्दरी और सौभाग्यशालिनी हैं, गौरी की भाँति सिद्धासन में स्थित हैं, शारदा की भाँति अक्षता हैं, जो जनकसुता सीता की भाँति अपने पति का डग-डग पर अनुसरण करती हों, सभी चराचरों की वह निश्छला माता ख्रिस्त की जननी मरियम की तरह सब का मंगल करें।२।

प्राणों के स्तम्भित हो जाने के कारण आह्लाद की जो ध्वनि उन्मथित समुद्र के लिए सोम-स्वरूपा है, जो स्कन्द की मुस्कान की तरह उज्ज्वल आभा से उद्भासित हैं, जो परम विश्राम प्रदान करनेवाली ओंकार स्वरूपा हैं और विज्ञानमय कोश की अधिष्ठात्री हैं; जो विश्व-प्रेम के समुद्र से कमला की तरह प्रकट हुई; रस की अनवरत वृष्टि करनेवाली आनन्द प्रदायिनी हैं, वैसी शारदा माता को हम निरन्तर प्रणाम करते हैं।३।

श्री श्री माँ की बातें

● स्वामी भूतेशानन्द

(उद्‌बोधन के पौष १४०३ अंक से अनूदित। अनुवादक-स्वामी चिरन्तनानन्द, रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर, अरुणाचल प्रदेश)

माँ के प्रथम दर्शन के समय मैं छात्र था। बाग बाजार में गंगा के किनारे सैर करने जाता। एक दिन वहाँ पर कुछ किशोर गाना गा रहे थे। विद्यासागर स्कूल के एक शिक्षक भी वहाँ पर थे। उन्होंने बैठने के लिए कहा। बैठा। बहुत अच्छा लगा। बाद में वहीं पर ज्ञान महाराज के सम्पर्क में आया। दोस्तों के साथ बागबाजार में गंगा के किनारे एक छोटे से शिव मन्दिर में जाते, तब से हमलोगों में परस्पर घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ था। हम सभी के संचालक एवं उपदेष्टा थे ज्ञान महाराज (ब्रह्मचारी ज्ञान)। वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। स्वामीजी ने उन्हें आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने के लिए आदेश दिया था। ज्ञान महाराज हमलोगों के समान अल्पवयस्क बालकों को अध्यात्मपथ पर संचालित करने की चेष्टा करते एवं अनेक प्रकार से उन्हें इस संबंध में प्रोत्साहन देते।

सन् १९१८ ई० के दिसम्बर महीने में माँ की जन्म तिथि[1] में ज्ञान महाराज हमलोगों को बाग बाजार में 'माँ के घर' या उद्‌बोधन में ले गये। उद्देश्य था, उस पवित्र दिन में श्री श्रीमाँ का दर्शन एवं प्रणाम करना। दिन भर का उत्सव उस समय समाप्त हो गया है। माँ के सेवक रासबिहारी महाराज (स्वामी अरूपानन्द) ने दूसरी मंजिल में माँ के कमरे के बरामदे से कहा, "दिन भर भक्तों को दर्शन देकर माँ अब थक गयी हैं, ज्ञान महाराज अकेले माँ को प्रणाम करके जा सकते हैं।" उत्तर में ज्ञान महाराज ने कहा, उनके साथ के बालकों को यदि माँ के दर्शन एवं प्रणाम का सुअवसर न मिले तो वे भी माँ को नीचे से ही प्रणाम कर चले जाएंगे। शायद माँ से पूछकर एवं माँ के आदेश से रासबिहारी महाराज ने हम सब को ऊपर जाकर माँ के दर्शन एवं प्रणाम करने का सुयोग प्रदान किया। हम सब एक-एक करके गये। माँ उस समय अपने कमरे के दरवाजे के सामने अपने स्वभाव सुलभ भाव से आपादमस्तक साड़ी से ढकी अवस्था में कुर्सी पर मात्र दोनों पैर बाहर रखकर बैठी थीं। अतएव माँ का श्रीमुख देखने का सुअवसर हममें से किसी को नहीं हुआ। हम सब उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम करके वापस आ गये। उस समय वहाँ पर गोलाप माँ, योगीन माँ एवं माँ के सेवक रासबिहारी महाराज उपस्थित थे। मात्र यही एक बार ही माँ को स्थूल शरीर में दर्शन करने का सौभाग्य मेरा हुआ था। इसके बाद माँ गाँव (जयराम बाटी) चली गयीं। एक वर्ष से भी अधिक गाँव में रहकर १९२० ई० के फरवरी महीने के अन्त में स्वामी सारदानन्द महाराज के तत्वावधान में माँ को उद्‌बोधन में लाया गया। माँ तब अत्यन्त अस्वस्थ्य थीं। बाद में माँ की तबीयत क्रमशः और खराब होती गयी, फलस्वरूप उनके और दर्शन नहीं हुए। अन्त में इसी वर्ष २१ जुलाई को उनकी महासमाधि हो गयी। महासमाधि के बाद उनकी देह को उद्‌बोधन में सभी भक्तों के दर्शनार्थ रखा गया था। इसी समय द्वितीय बार दर्शन किया।

1. विशुद्ध सिद्धान्त पञ्जिका के संपादक अरूण कुमार लाहिड़ी ने हमलोगों को बताया है कि तारीख थी २४ दिसम्बर (१९१८), मंगलवार—९ पौष. १३२५। उल्लेख्य है कि, १९१८ ई० में माँ की जन्म तिथि दो बार हुई थी—प्रथम बार ४ जनवरी शुक्रवार—२० पौष, १३२४।

—सम्पादक, 'उद्‌बोधन'

उनके पार्थिव शरीर को जब उद्बोधन से बेलुड़ मठ में अन्तिम संस्कार के लिए लाया गया उस समय जो शोभा यात्रा हुई थी उसमें भी हम लोगों ने भाग लिया था। स्वामी सारदानन्द महाराज के नेतृत्व में हम सब पैदल उद्बोधन से बराह नगर कुठिघाट पहुँचे। वहाँ मठ की ही एक नौका से माँ की देह को मठ में ले आया गया। नौका के मल्लाह एवं डांडी थे साधुगण ही। किराये की और भी कुछ नौकाएं सभी के लिए रखी हुई थीं। उनमें से एक में गंगा पार करके हम सब मठ में आये। खाली पैर बागबाजार से कुठिघाट आने से प्रचण्ड धूप के कारण बहुतों के पैरों में फफोले पड़ गये थे।

स्वामी जी के घर के दक्षिण में स्वामी ब्रह्मानन्द जी के द्वारा स्वयं लगाए नागलिंगम पेड़ के किनारे तक उस समय गंगा थी। वहाँ पर गंगा का किनारा ढालू था। माँ को वहीं पर नौका से उतारा गया। वहाँ से मठ-भवन के आँगन में आम पेड़ के नीचे ले जाया गया जिससे साधु एवं भक्तगण माँ के दर्शन कर सकें। उसके बाद माँ के वर्त्तमान मंदिर के सामने गंगा घाट ले जाया गया। ठीक, घाट नहीं, परन्तु वहाँ पर गंगा का पाट समान एवं समानान्तर था। वहाँ पर माँ को स्नान कराया गया। मठ में अभी जहाँ पर माँ का मंदिर है वहीं पर केवल चंदन की लकड़ी से चिता सजायी गयी थी। मुखाग्नि के लिए ठाकुर के भतीजे राम लाल दादा को आमंत्रित किया गया था परन्तु वे मिले नहीं, अतः शिबू दादा से (रामलाल दादा के भाई) मुखाग्नि एवं चिता में प्रथम अग्नि संयोग कराया गया।[2]

दाह क्रिया के बाद चिता बुझाने के लिए साधुओं के साथ भक्तों ने भी गंगाजल ढाला था। उसके बाद साधुओं में से किसी-किसी ने माँ के देहावशेष भस्म संग्रह किया था। साधुओं के बाद भक्तों में भी अनेक ने संग्रह करना शुरू किया। तब स्वामी सारदानन्द महाराज ने अपनी स्वभाव सुलभ गंभीरता त्यागकर उच्च स्वर में कहा, "जो इस पवित्र चिताभस्म का संग्रह कर रहे हैं वे मानो याद रखें कि, इसकी पवित्रता की रक्षा तथा नित्य पूजादि की व्यवस्था न करने से सर्वनाश होगा।" उनके इस गंभीर स्वर में उच्चारित सर्तकवाणी से आतंकित होकर सभी भक्तों ने अपने द्वारा संग्रहित चिताभस्म को पुनः चितास्थल में रख दिया। साधुओं में से किसी किसी ने शायद अपने पास चिताभस्म रखा था। कम-से-कम एक को तो जानता हूँ— उनके पास माँ की चिताभस्म थी। वे थे गिरिजा महाराज (स्वामी गिरिजानन्द)। वे माँ की पवित्र अस्थि की नित्य पूजा करते, कहीं बाहर जाने से, जहाँ पर पूजोपकरण नहीं मिलता, वहाँ पर तुलसी के पत्ते से पूजा करते। ★

2. स्वामी गंभीरानन्द की 'श्री माँ सारदा देवी' ग्रंथ में इस संबंध में कोई उल्लेख न रहने पर भी दुर्गापुरी देवी की 'सारदा-रामकृष्ण' ग्रंथ में रामलाल-दादा द्वारा 'शिराग्नि-कार्य सम्पन्न होने की बात कही गयी है। पूज्यपाद महाराज जी की स्मृति कथा इस संबंध में नवीन दृष्टिभंगी प्रदान कर रही है।

—सम्पादक, 'उद्बोधन'

प्रिय पाठक

पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्य में वृद्धि के फलस्वरूप छपाई सामग्री की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण विवेक शिखा का वार्षिक शुल्क १९९८ ई० से ५० रु० करने को बाध्य होना पड़ा है। हमें आशा है कि पाठकगण हमारी विवशता को समझेंगे और हमें पूर्ववत अपना सहय ग देते रहेंगें।

— व्यवस्थापक

माँ सारदा देवी के संस्मरण

श्री रसनअली खाँ

अनुवादक—डॉ० रामानन्द शर्मा, छपरा

[डॉ० तड़ित कुमार वंद्योपाध्याय ने १४ मई, १९६३ ई० को जयराम बाटी के निकट शिरोमणिपुर के रसन अली खाँ के संस्मरणों को लिपिबद्ध किया था। उस समय श्री खाँ प्रायः इक्यानवे वर्ष के थे। ये संस्मरण स्वामी पूर्णात्मानन्द द्वारा सम्पादित और उद्बोधन कार्यालय कलकत्ता द्वारा "प्रकाशित श्री श्री मायेर पदप्रान्ते" नामक ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में समाविष्ट हुए हैं। ये संस्मरण श्री धरित्री कुमार दास गुप्ता द्वारा बंगला से अंग्रेजी में अनूदित होकर "बुलेटिन ऑफ द रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्युट ऑव कल्चर" के अक्टूबर १९९७ अंक में प्रकाशित हुए जिनका हिन्दी में अनुवाद डॉ० रामानन्द शर्मा, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा ने विवेकशिखा के पाठकों के लिए विशेष रूप से किया है। —सं०]

चौदह वर्ष की उम्र में मुझे मेरे चाचा—मफती शेख और हमीदी शेख—अपने साथ माँ सारदा के निवास स्थान पर ले गये। मेरे चाचा परमानन्दपुर के निवासी थे और मैं शिहर के निकट शिरोमणिपुर में रहता था। इन दोनों गाँवों के अनेक नर-नारियों का माँ के साथ बड़ा ही आत्मीय एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध था। माँ शिरोमणिपुर के अमजद, उसकी पत्नी मतीजान बीवी और उसकी माँ फातिमा बीवी का विशेष ध्यान रखती थीं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि माँ ही उस परिवार का भरण-पोषण करती थीं। अमजद पुलिस की तलाश से परेशान हो गाँव से भागा रहता था। उसकी अनुपस्थिति में उसकी माँ और बीवी माँ के यहाँ ही शरण लेती थीं। उनके दुःख से कातर हो माँ उन्हें गुड़-मूढ़ी खिलाती थीं और कपड़े, भोजन और सिर में डालने के लिए तेल तथा घर-बार सम्बन्धी अन्य वस्तुएँ भी उन्हें देती थीं।

यह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का समय था। वह क्षेत्र बाँकुड़ा तथा हुगली जिले के संधि-स्थल पर जयरामवटी गाँव के आसपास का क्षेत्र था। इस क्षेत्र में शहतूत की खेती होती थी। अँगरेज व्यापारी जमींदारों के द्वारा पैसे देकर वहाँ के निवासियों को इस खेती के लिए बाध्य करते थे। शिरोमणिपुर और परमानन्दपुर के अधिकांश निवासी गरीब मुसलमान थे। वे जमींदारों और अँगरेज व्यापारियों से सर्वदा भयाक्रांत रहते थे और उनके भय से उन्हें अन्य फसलों के उगाने का अवसर ही नहीं मिलता था। अपने मनोनुकूल खेती न कर सकने के कारण भय और संकट उनके चिर सहचर बन गए थे। किन्तु उनकी पीड़ा से आसपास के धनी और मध्यवर्गीय लोग बेखबर थे। केवल माँ ही उनकी पीड़ा और संकट की चिंतित और स्नेह पूर्ण सहयोगिनी थीं।

हमीदी शेख, मफती शेख और रमजान पठान अपनी बैलगाड़ियों में यात्रियों को विष्णुपुर तक ढोते थे। माँ और उनकी भतीजियों को भी अनेक बार जयरामवाटी और कोयलपारा के

बीच यात्रा कराई थी। कई बार वे माँ को कलकत्ता के मार्ग में विष्णुपुर तक ले गये थे। माँ के प्रति उनका स्नेह केवल इन यात्राओं तक ही सीमित नहीं था। विपत्ति और पीड़ा के दिनों में वे माँ के पास ही जाते थे। मिट्टी से बने उनके नये मकान को बनाने वाले अधिकांश मजदूर भी इन गाँवों के ही थे। मफती शेख माँ के भाई के खेत जो शिहर के पास थे, जोतते थे। मफती शेख और हमीदो शेख की पत्नियाँ नफोजान बीवी और मेरीजान बीवी के माँ के साथ बड़े ही स्नेह-पूर्ण सम्बन्ध थे। वे अनेक बार माँ के घर भी जाती थीं। माँ उन्हें प्यार से बीवी बहु कहा करती थीं। वे बड़े स्नेह से उन्हें खिला-पिला कर उनके सुख दुःख की बातें सुनती थीं।

जब माँ का नया घर बन रहा था तो शरत महाराज (स्वामी सारदानन्द जी) जयराम बाटी गये थे। इस क्रम में वे शिरोमणिपुर एवं परमानन्दपुर भी गये। मैं ने उन्हें देखा था। वस्तुतः माँ का मकान बनने के क्रम में इन दोनों गाँवों के लोगों को माँ के भारतीय सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उस युग में उस क्षेत्र के हिन्दू संकीर्ण जातीय एवं धार्मिक भेदभाव से ग्रस्त थे। वे मुसलमानों को अपने घर तक में नहीं आने देते थे। कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने गृह निर्माण में मुस्लिम श्रमिकों कि नियुक्ति पर भी हो हल्ला मचाया और आपत्ति की। उन्होंने माँ को मलेच्छ तक कहा। माँ के संबंधियों ने भी उन्हें मुसलमान मजदूरों को निर्माण कार्य में न लगाने को कहा। माँ सामान्यतः सिर को साड़ी के पल्लू से बिना ढके बाहर नहीं निकलती थीं और मन्द स्वरों में बात करती थीं। उन्होंने इस अन्याय के साथ कभी समझौता नहीं किया और सदैव इसके विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। बात यहाँ तक पहुँची कि लोगों के दबाव के कारण निर्माण कार्य कुछ दिनों के लिए स्थगित करना पड़ा। बाद में मैंने सुना कि माँ ने केवल मुसलमान मजदूरों को इस कार्य में लगाने की इच्छा प्रकट की। अंततोगत्वा कट्टरपंथियों को माँ की दृढ़ इच्छा शक्ति और निश्चय के समक्ष झुकना पड़ा! उसके बाद यह कार्य आसान हो गया और सहज गति से चलने लगा।

उस समय कोटुलपुर और बदन गंज में दो बड़े और शिरोमणिपुर में एक छोटा बाजार था। जयराम बाटी में सामान्यतः कुछ नहीं मिलता था। उन गाँवों के अधिकांश लोग कुछ सब्जियाँ उगाते थे। मफती चाचा उन सब्जियों—कोंहड़ा, कद्दू, सहजन, साग इत्यादि को इकट्ठा कर माँ के घर पहुँचा आते थे।

मुझे मफती चाचा द्वारा कही गयी एक आश्चर्यजनक घटना अभी तक याद है। उन्होंने कहा था कि माँ मानवी नहीं पीर दरवेश हैं। एक दिन मैं एक कोंहड़ा लेकर माँ के नये घर पर गया। वहाँ मैं अक्सर जाया करता था और कभी मैंने असहज अनुभव नहीं किया। माँ पूजा पर बैठी थीं मैंने माँ को पुकारकर कहा—माँ, मैं कोहड़ा लाया हूँ। एक स्त्री बाहर निकली और मुझे कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा। मैं दूर से माँ को पूजा पर बैठे देख रहा था। सहसा माँ को मैं अपने स्थान पर नहीं देख पाया। वे हवा में तीन फीट ऊपर उठ गयी थीं और वहाँ शांत और स्थिर मग्न से ध्यान में लीन थीं। वे हवा में जप कर रही थीं। उनकी आसनी नीचे पड़ी थी। मैं चकित था और सोच रहा था कि कहीं यह भ्रम तो नहीं है। मैंने आँखें मलीं पर वही दृश्य सामने था। मैं स्तंभित था और चिल्लाकर अन्य साधुओं को बुलाना चाहता था। पर सहसा सब कुछ तिरोहित हो गया। माँ बाहर आयीं। मैंने डरते-डरते उन्हें प्रणाम किया। माँ ने एक स्त्री को बुलाकर मेरे लिए मूढ़ी, गुड़

और सिर में लगाने का तेल लाने को कहा। मेरी कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

मुस्लिम पुरुषों की तरह मुसलमान औरतें भी माँ के पास जाती थीं। विवाहित औरतें सब्जी और फल बेचने जयरामबाटी जाती थीं उनमें से एक वृद्धा रूबीना बीवी अक्सर माँ के यहाँ आम और कटहल लेकर बेचने जाया करती थी। माँ उन्हें बड़े प्यार और आदर से खुरी काकी) कहा करती थी।

उन दिनों शिरोमणिपुर और शिहर में खजूर के बहुत से पेड़ थे। जिनके फलों को ऊपर से काट कर रस चुलाने के लिए उनमें मिट्टी के बरतन (लवनी) लगा देते थे। प्रतिदिन लगभग सौ खजूर-ताड़ के फलों का रस गुड़ बनाने के लिए ले जाया जाता था। शाहजहाँ खाँ, मजोद खाँ, सादिक अली, रफी मियाँ आदि अनेक व्यक्ति गुड़ बनाने का यह धंधा करते थे। वे ताड़ और खजूर का गुड़ बनाकर कोतुलपुर वदनगंज, कामारपुकुर चट्टी और गोधाट इत्यादि स्थानों पर बेचते थे। यह उनका प्रधान पेशा था। ताड़-खजूर के गुड़ बनाना बड़ी ही मेहनत का काम था। यह मेरे परिवार की भी आजीविका थी और अनेक बार मैं स्वयं माँ के यहाँ ताड़-खजूर का गुड़ और रस लेकर गया था। माँ को ये चीजें अच्छी लगती थीं। जब-जब इन वस्तुओं के साथ मैं माँ के पास जाता वे उसका उचित मूल्य मुझे दे देती थीं। मेरे चेहरे पर अस्वीकृति का भाव देखकर वे कहती थीं कि मेरे बच्चे, ये चीजें बड़े परिश्रम से बनती हैं अतः तुम्हें इनका मूल्य स्वीकार करना चाहिए। साथ ही माँ हमलोगों को मूल्य के साथ प्रचुर मात्रा में मिठाइयाँ, अन्य खाने योग्य वस्तुएँ, मूढ़ी और मुर्की का प्रसाद भी देती थीं।

दादू फकीर और सालिम फकीर भी बहुधा माँ के पास जाते थे। नवान्न उत्सव के अवसर पर वे मयूर पंखी हिला-हिलाकर भिक्षाटन करते थे। माँ उनका बहुत सम्मान कर प्यार देती थीं। वे पीर दरगाह पर चढ़ाने की सामग्री भेजती थीं। हमीदी और मफेती चाचा कहा करते थे कि वे सिन्नी तथा मिठाइयाँ भेजकर हमारे धर्म के प्रति सम्मान और आस्था प्रकट करती थीं।

मफेती चाचा ने एक बार पूछा कि माँ, आप हिन्दू होकर भी हमलोगों के धार्मिक समारोहों में चढ़ाने की सामग्री क्यों भेजती हैं। माँ का उत्तर था कि क्या उस परमेश्वर को बाँटा जा सकता है। वह तो एक ही है। तुम जानते हो कि ठाकुर की आस्था इस्लाम धर्म में भी थी और वे नमाज भी पढ़ते थे। वह परम सत्ता तो एक ही है केवल उसकी संज्ञायें भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुसार अलग-अलग हैं। माँ का मफेती और दूसरों के प्रति अतिशय स्नेह और आस्था थी।

बहुत दिन हुए माँ के मन्दिर पर बिजली गिरी। किशोरी महाराज (स्वामी परमेश्वरानन्द जी) ने मफेती चाचा से कहा कि मफती, देखो माँ के मन्दिर पर वज्रपात हुआ है। किशोरी महाराज के निर्देश पर मफेती रोज मंदिर के पास अजान देने लगे। शीघ्र ही माँ के दिग्दर्शन में साधुओं को सभी धर्मों में आस्था हो गई।

हमलोग ठाकुर और माँ को पैगम्बर के रूप में देखते हैं। मफेती और हमीदी चाचा सर्वदा ठाकुर और माँ के ध्यान में लीन रहते थे। क्या ऐसे महामानव, देवदूत, स्वर्गस्थ परमेश्वर के संदेश वाहक इस पृथ्वी पर बार-बार जन्म लेते हैं?।

श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें (३)

— स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक—स्वामी चिरन्तानन्द

रामकृशन मिशन, नरोत्तम नगर

ठाकुर कहते, "साधु का राग पानी के दाग के समान है।" यह उनके शिष्यों के बीच प्रत्यक्ष देखा है। अभी-अभी ही किसी कारणवश खूब गाली-गलौज किये, दूसरे ही क्षण एक अन्य व्यक्ति-स्नेह से परिपूर्ण! उन लोगों की Simplicity (सरलता) Wonderful (अपूर्व) थी। हम लोगों के साथ जो प्रीतिसंबंध बनाकर रखा था—यही हम लोगों का परम सौभाग्य था। वे कहते, तुम लोग आये हो– ठाकुर के आश्रय में रहो। धन्य हो जाओ!,'

उन लोगों के चरित्र का और एक वैशिष्ट्य है—वे कभी किसी का दोष नहीं देखते थे। कोई जैसा भी हो—प्रत्येक के ऊपर विश्वास करते प्रत्येक को सुन्दर ढंग से रहने का सुअवसर देते। भूल की है, फिर से सुयोग दिया है। कितने उदार थे वे लोग! उन लोगों के समय नियम कठोर नहीं था। इसका कारण था, उनकी आध्यात्मिकता का जोर! उनके सान्निध्य में रहने से ऐसा एकभाव मन में आता कि मन में किसी प्रकार का प्रश्न ही नहीं उठता था। हम लोगों की Spirituality (आध्यात्मिकता) नहीं है इसीलिए नियम-कानून के ऊपर इतना जोर देना पड़ता है। उन लोगों के पास जब था, तब स्वयं को Struggle (संघर्ष) करके कभी भी मन के भाव को ऊँचा रखना नहीं पड़ा है, उनकी कृपा से ही मन की वृति अपने आप संयत होकर रहती।

भुवनेश्वर मठ के विशाल गेट का निर्माण कार्य जब आरम्भ हुआ तब महाराज रास्ते पर खड़े होकर उस कार्य को देखते। इस समय किसी भक्त ने कहा था, "महाराज, इस जंगल में इतना बड़ा गेट क्यों बनवा रहे हैं? (उस समय भुवनेश्वर में लिंगराज मन्दिर के साथ संलग्न अंचल छोड़कर चारों ओर महुआ, नाक्सभूमिका, साल-सागौन के जंगल थे।) महाराज ने स्मित हास्य से उत्तर दिया था, "भविष्य में यह स्थान जाग उठेगा, भुवनेश्वर उड़ीसा का प्राण केन्द्र होगा।" सन् १९१८-१९१९ ई० में महाराज ने यह बात कहीं थी। इसके बाद चौथे दशक में देखा गया उनकी भविष्यवाणी सत्य होने जा रही है। छठवें दशक में भुवनेश्वर पूर्ण नगरी बन गयी है और आठवें दशक के अन्त में देखा जा रहा है, साल महुआ का जंगल समाप्त हो गया है, अब चारों ओर मात्र लोकारण्य है। तीसरे दशक में भी चारों तरफ जंगल में बाघ का आना जाना था। स्टेशन से यहाँ आते समय दोनों तरफ घना जंगल था। शरीर सिहर उठता था। इसी समय आश्रम के एक बड़े कुँए में एक भालू गिर गया था। उसे बहुत से लोगों ने मिलकर रस्सी एवं चेन से बाँधकर खींचा था। ऊपर आते ही दौड़कर जंगल में चला गया था। एक बार एक परिचित शिकारी ने बंदूक लेकर महाराज को प्रणाम करके कहा, "महाराज आशीर्वाद दीजिए जिससे सफल हो सकूँ, इस जंगल में एक बाघ बहुत अत्याचार

कर रहा हैं, उसे मारने जा रहा हूं।" महाराज ने गंभीरतापूर्वक कहा, "देखो भाई, एक जीव हत्या के लिए तुमको आशीर्वाद नहीं दे सकता। फिर भी तुम्हें कुछ विपत्ति न हो इसलिए ठाकुर के पास प्रार्थना करूँगा।" सब क्षेत्रों में ही देखा है, उनकी चिन्तन शैली एक सुर में बंधी हुई इतिवाचक थी। कभी भी किसी प्रकार विश्रृंखल नहीं देखा। यही था उनका वैशिष्ट्य।

छिप* लेकर मछली पकड़ना महाराज का एक शौक था। एक बार दक्षिण भारत एवं पुरी से वापस आने के बाद दिसम्बर अथवा जनवरी से बेलुड़ मठ में एक दिन महाराज मछली पकड़ने के लिए जोड़-तोड़ कर रहे हैं। बाबूराम महाराज की इच्छा नहीं है कि मठ के अध्यक्ष महाराज बैठे-बैठे मछली पकड़े। परन्तु महाराज और भी अधिक बैठते और मंदहास करते। शीतकाल में छिप में मछली पकड़ना मुश्किल होना है क्योंकि जल के किनारे पर मछली आती नहीं। फिर भी छिप लेकर एकदृष्टि फातना* (सोले का टुकड़ा) की ओर देखते हुउ बैठे रहना ही महाराज का मानो एक नशा है। उस समय के मुख्य प्रवेश द्वार (ठाकुर के मंदिर के दक्षिण की ओर का जो गेट है, जो अभी के पल्लीमंगल शो रुम के सामने है) को पारकर मठ में प्रवेश करने के समय बायें तरफ एक डबरा के समान एक छोटा ताल था, जिसके चारों तरफ नारियल के पेड़ थे। अभी नारियल के दो-चार पेड़ है। उस दिन दोपहर करीब तीन बजे इसी ताल के किनारे जाकर महाराज बैठ गये। मैं सब व्यवस्था करके महाराज को बैठाकर अन्य काम के लिए गया। शीतकाल के कारण छाते की जरूरत नहीं पड़ी। महाराज मानो धूप सेंक रहे हैं और मछली पकड़ रहे हैं। शायद ही एक दो बार सोले का टुकड़ा हिला हो। महाराज अपलक दृष्टि से फातना की ओर देखते हुए बैठे हैं। इसी समय एक व्यक्ति ने भी इस गेट में प्रवेश कर मठ की ओर जाते समय देखा कि एक साधु गमछा बाँधकर धूप में पीठ पीछे कर बैठे हुए हाथ में छिप लेकर मछली पकड़ रहे हैं। उस व्यक्ति ने मठ-प्रांगण में आकर बाबूराम महाराज से पूछा, "यहाँ के अध्यक्ष कौन है? बाबूराम महाराज ने कहा, क्यों?" मैं मेदिनीपुर का डी० एम हूँ। दो-चार दिन के लिए कुछ काम से कलकत्ता आया हूँ। मेरी खूब इच्छा है कि यहाँ के अध्यक्ष से दीक्षा लूँ।" बाबूराम महाराज ने सब सुनकर कहा, "अच्छा है तो बैठिए, प्रसाद लीजिए, कुछ देर में ही उनके साथ मुलाकात होगी।" उस व्यक्ति ने प्रसाद लेकर पूछा, "अच्छा उस ताल के पास एक साधु सिर में गमछा बांधकर बैठे मछली पकड़ रहे हैं। वे कौन हैं?" बाबूराम महाराज ने संकोचपूर्वक बताया—वे ही मठ के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज हैं। यह सुनते ही वह व्यक्ति उछल कर उठ खड़ा हुआ और बोल उठा, "महाराज, मछुआरे साधु के पास दीक्षा नहीं ले सकूँगा।" कहकर दनदनाते हुए चला गया। जाते समय हम लोगों ने लक्ष्य किया कि महाराज जहाँ पर बैठे थे उस तरफ देखा तक नहीं। बाबूराम महाराज अत्यन्त व्याकुल दिखाई दे रहे थे। महाराल जब वापस आए, बाबूराम महाराज ने उनके सामने कुछ टीका-टिप्पणी भी की। महाराज हँसते-हँसते ऊपर जाते समय बोले, "बाबूराम-दा, उनकी कृपा से कितने डी० एम० आएँगे-जाएँगे। अभी हुआ ही क्या है?"

दो दिन बाद ही वह व्यक्ति फिर आया। इस बार उनकी बातचीत का ढंग, चाल-चलन मानो

छिप—पतला बाँस जिसके सिरे पर मछली फँसाने के लिए सूत और बंसी लगी हो।
फातना—बंसी की डोरी में बंधी हुई हलकी लकड़ी या सोले का टुकड़ा जो पानी पर तैरता रहता है।

बदल गया है। विनम्रता पूर्वक बाबूराम महाराज से अनुरोध करते है कि एक बार "स्वामी ब्रह्मानन्द जी" के दर्शन करा दें। बाबूराम महाराज विस्मित होकर कहते हैं, "यह क्या महाशय ? उस दिन वे छिप लेकर बैठे थे देखकर 'मछुआरा साधु' कहकर चले गये थे, आज फिर दर्शन करना चाहते हैं ? उस व्यक्ति ने रुँआसा सा होकर जो कहा उसका अर्थ है, दो दिन तक सो नहीं पाया, तंद्रा (ऊँध) आने से ही ठाकुर का चित्र आँखों के सामने तैरने लगता है। ठाकुर कहते हैं, 'अरे, उसका और एक रूप है जाकर देख आ।" यह सुनकर बाबूराम महाराज उन्हें लेकर ऊपर गये। महाराज उस समय मठ-भवन के ऊपर बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठे गंगा की ओर निहार रहे हैं। नेत्र स्थिर है। उस व्यक्ति ने बहुत देर तक निश्चल होकर यह देखा, फिर जोर-जोर से रोते हुए महाराज के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। बाद में उसने महाराज के पास से कृपा प्राप्त की थी। दीक्षा के दिन गुरु दक्षिणा के रूप में अन्यान्य वस्तुओं के साथ था, छिप, चकरी, डोरी, बंसी यह सब। ये सब आज भी राजा महाराज के मंदिर के ऊपर आलमारी में रखा है। उन लोगों का सब बातों में ही था बालक स्वभाव। मानो सब कुछ एक खेल हो। छिप फेंकना एवं समाधि में जाना दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं था उनके जीवन में। "स्थित प्रज्ञस्य का भाषा !"

महाराज का जैसे बाल-स्वभाव था वैसे ही वे थे गंभोर एवं वैसा ही था उनका प्यार। एक दिन मठ भवन में उनके कमरे के पास वाले बरामदे में सोया हुआ हूँ। ठड का समय हैं। थोड़ी-थोड़ी बरसात हो रही है। गंगा की तरफ वाला बरामदा तिरपाल के परदे से ढका हुआ है। उस समय बिस्तर आदि भी कुछ खास नहीं था, सूती के दो कम्बल मात्र थे। एक बिछाने के लिए, एक ओढ़ने के लिए। थोड़ा बुखार था। उस दिन सोते हुए बीच में बुखार के कारण शायद घिघियाया था। कमरे के भीतर से महाराज ने सुना था। धीरे-धीरे बाहर आकर स्वयं की रजाई से मेरे शरीर को अच्छी तरह ढककर गये थे। मुझे कुछ मालूम ही नहीं हुआ, परन्तु गरम लगने के कारण आराम से सोया था। भोर में जब नींद खुली तो देखा कि महाराज की रजाई मेरे शरीर के ऊपर है। जल्दी से उठकर रजाई को तह कर रजाई से सिर को स्पर्श कर उनके कमरे में गया, देखा महाराज एक ऊनी चादर लपेटकर ध्यान कर रहे हैं। कमरे में मेरी उपस्थिति जानकर कहा, "क्या रे, ज्वर कुछ कम हुआ है बेटा ?" विनम्रतापूर्वक मैंने कहा, "अपनी रजाई मेरे शरीर पर क्यों दी महाराज ? मेरा अपराध होगा।" उन्होंने मृदुस्वर से उत्तर दिया" "अरे बुद्धू, तुमने तो अपने से नहीं लिया, मैंने तुम्हें ओढ़ाया था। तुम्हारी तबीयत खराब होने से तो मुझे ही कष्ट होगा न। जो भी हो, आज अस्पताल से दवाई लाकर खाना।" छोटी मोटी घटना के बीच उनका इतना अधिक प्यार एवं दर्द जो देखता हूँ वह कहने की बात नहीं है। माँ-बाप का प्यार और कितना ! इन लोगों का, ठाकुर के सब शिष्यों का प्यार था अकृत्रिम एवं असीम ।

महाराज जब मजाक करते हँसते-हँसते पेट दर्द करने लगता है। इतना पवित्र था उनका मन। गंगाधर महाराज को लेकर खूब तमाशा करते थे। बीच-बीच में महापुरुष महाराज, बाबूराम महाराज एवं हम लोगों के साथ भी रसिकता करते थे। एक घटना कहता हूँ। महाराज जैसे खा सकते थे वैसे ही उपवास भी कर सकते थे। सारा दिन-रात उपवास करके दूसरे दिन सवेरे खाते थे। इसी तरह एक बार सारा दिन उपवास हैं। दूसरे दिन सबेरे खाएँगे, अतः कुछ संदेश, कुछ

रसगुल्ला आलमारी में रखा हुआ है। भोर में उठकर देखता हूँ, आलमारी में संदेश का डब्बा, रसगुल्ला का बर्तन सब ठीक ही है, केवल भीतर में कुछ भी नहीं है। कौन इस तरह का काम कर सकता है? किसका इतना साहस होगा? सोचा, अब क्या होगा? महाराज को तो कुछ देर बाद ही खाने को देना होगा। क्या दूँगा? महाराज के घर में जाकर देखता हूँ महाराज चादर से सिर-पैर ढककर ध्यान कर रहे हैं। अत्यन्त व्यग्रतापूर्वक बाबूराम महाराज से कहा, "अभी ही बालि में आदमी भेजना होगा संदेश एवं रसगुल्ला खरीदने के लिए।" सब सुनकर बाबूराम महाराज ने मुझे गाली देनी शुरु कर दी और कहा, वे स्वयं जाकर घटनास्थल देखेंगे। सीढ़ी से ऊपर चढ़ने के समय फिर एक बार मुझे गाली दी, "तुम लोग इतने लापरवाह क्यों हो? आलमारी ठीक से बंद नहीं कर सकते। बिल्ला तो बहुत दिन से उत्पात कर रहा है, सभी जानते हैं।" मेरे कुछ बोलने से पहले ही महाराज बोल उठे एवं हाथ से दिखाने लगे, "हाँ बाबूराम दा, मैंने देखा है इतना बड़ा (हाथ फैलाकर दिखाते हैं) एक—बिल्ला आकर सब कुछ गपागप करके खा गया। वह इतना बुद्धिमान था कि आलमारी खोलकर मिठाई सब खाकर पुनः आलमारी बंद कर दी।" बाबूराम महाराज जोर से हँस पड़ते हैं। मैं भी बात समझ कर बाहर आ गया। रात में भूख लगने के कारण महाराज ने सब खाकर हम लोगों को चौंका देने के लिए इस तरह करके रख दिया था।

और एक दिन की घटना है। ज्येष्ठ मास की धूप है दोपहर के तीन बजे होंगे। महाराज विश्राम के बाद खुली छत पर उठे हैं। मुँह धोयेंगे। मैं पानी ढाल रहा हूँ। अचानक दक्षिणेश्वर मंदिर की ओर ताककर वे स्थिर हो गये। हाथ का पानी सब गिर गया। आँखें स्थिर हैं, गर्म छत से पैर जले जा रहे हैं, सिर के ऊपर धूप है। मैं स्वयं खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ। परन्तु महाराज खड़े हैं। बहुत देर बाद होश आया। मुँह धोये। इन लोगों की भावसमाधि, हास-परिहास सब कुछ श्रीरामकृष्णमय था। अचानक दर्शन से ऐसा लगता मानो सांसारिक साधारण मानव हैं। परन्तु ठाकुर, माँ स्वामी जी की बातें अथवा देव देवी की बातें होने से ही मुहूर्त में भावसमाधि में निमग्न हो जाते। यही है इनके मन का वास्तविक स्वरुप।

महाराज रात भर अद्भुत भाव में रहते। आधीरात में उठकर बैठे हुए जप करना उनके प्रतिदिन का अभ्यास था, पुनः दो बजे सो जाने के बाद भी फिर से चार-साढ़े-चार बजे उठकर बाथरूम में जाते। इस समय खुली छत से होकर जाते हैं इसलिए हैंगर के ऊपर से एक फतुआ उतारकर पहनते एवं फतुआ प्रतिदिन एक निर्दिष्ट स्थान पर रखा रहता। बाथरूम जाने एवं वापस आकर जप में बैठने के बीच साधारणतः वे आँख नहीं खोलते थे एवं बातचीत भी नहीं करते थे। एक दिन मैंने भूल से हैंगर में निर्दिष्ट स्थान पर फतुआ को न रखकर अन्य स्थान पर रख दिया था। भोर में महाराज हमेशा की तरह निर्दिष्ट स्थान में फतुआ न पाकर स्वाभाविक ही खीझे हुए हैं। गंभीर होकर मुझे बुलाया, सुज्जि मेरे फतुआ का क्या हुआ?" मैं बरामदा में बैठकर जप कर रहा था, महाराज की आवाज सुनकर हड़बड़ाकर कमरे में आया एवं अन्य स्थान पर से फतुआ लेकर महाराज को देने गया। महाराज बिरक्त होकर—"जा, इस प्रकार सेवा करने की तुम लोगों को जरूरत नहीं"—कहकर मुझे थोड़ा सा धक्का दिया, उससे ही मैं छिटककर बरामदा में जा गिरा। उनके शरीर में इतनी शक्ति है पहले नहीं जानता था। मुझे गिरते देखकर तुरन्त ही दुःख-

पूर्वक कहा "बेटा, शरीर तो बूढ़ा हो गया है जानकर तुम लोगों के ऊपर इतना निर्भर करता हूँ, और तुम लोग यदि थोड़ी सी भी सतर्कतापूर्वक काम नहीं करोगे तो फिर कैसे चलूँगा? देखो तो भला, आज पूरा प्रातःकाल नष्ट कर दिया।" अर्थात् इसप्रकारबात करना, आँख खुलना इत्यादि कारणों से आज और अब महाराज का ठीक से ध्यान नहीं होगा। मुझे अत्यन्त पश्चाताप हुआ। महाराज को प्रणाम करके इस भूल के लिए क्षमा माँगी। महाराज ने स्निग्ध कंठ से मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा, "जा ठीक है, ऐसे भूल और न होने से ही होगा। सब काम में सतर्कता चाहिए, समझा।"

महाराज का स्वभाव जैसा स्निग्ध एवं कोमल था, वैसा ही प्रयोजन अनुसार कठोर भी होता। उस अवस्था में पूरा मठ अथवा आश्रम काँप उठता था। एक बार एक लड़का ब्रह्मचारी होने के लिये आया और आते ही मठ के नियम शृंखला एवं ध्यान-भजन, पाठ आदि की प्रत्यक्ष समालोचना करनी शुरु कर दी। सब्जी काटना, बर्तन माँजना-यह सब लड़कियों का काम करके समय नष्ट करने का कोई मतलब नहीं है। ये सब बातें वह कहता। महाराज कुछ दिनों से ये सब सुनते थे। एक दिन उसको बुलाकर कहा, "देखो भई, तुम्हारे भीतर बहुत शक्ति हैं, काम भी बहुत करोगे, किन्तु इस घराने के तुम नहीं हो। भाई जहाँ तुमको अच्छा लगता हैं तुम चले जाओ।" ब्रह्मचारी ने तब अपने किये गये अपराध के लिए क्षमा चाही एवं और एक बार सुयोग देने के लिए अनुरोध किया। महाराज ने पहले से अधिक गंभीर दृढ़तापूर्वक कहा, देखो, ऐसा जीवन-यापन के लिए बार बार सुयोग नहीं आता, एक एक बार ही आता है। तुमने वह सुयोग गवाँ दिया, अवहेलना की, दूसरे के भाव को नष्ट किया है। इसलिए कहता हूँ, तुम्हारा घराना दूसरा है।" बाद में उस ब्रह्मचारी ने अन्यत्र संन्यास ग्रहण करके स्वयं ही एक बड़ी सेवासंस्था स्थापित की थी।

महाराज का मन अत्यन्त कोमल था। नटी तारासुंदरी महाराज की कृपा पात्री थी। महाराज के पास वह आती एवं बाद में भुवनेश्वर में एक कमरा लेकर ठाकुर का फोटो सजाकर, ठाकुर के सामने अपने भाव में भजन करती, नाचती—मानो ठाकुर सामने बैठकर देख रहे हैं, सुन रहे हैं। यह था तारासुन्दरी का भाव, भक्ति निवेदन करने की रीति। उनके अत्यन्त अनुरोध के कारण महाराज एक दिन थिएटर देखने के के लिए गये। 'स्टार थियेटर' में क्या कहाँ पर है याद नहीं, कौन नाटक देखने गए थे यह भी अब याद नहीं है। किन्तु नाटक का एक दृश्य अभी भी याद है। बाक्स में महाराज बैठे हैं। हममें से जो साथ आये हैं, आस पास बैठे हैं। भक्तिपूर्ण जोरदार कोई नाटक हो रहा था। नाटक के बीच में एक हृदयविदारक करुण दृश्य था। तारासुन्दरी का अभिनय अत्यन्त प्राणस्पर्शी हुआ था। महाराज यह दृश्य देखकर सुबक-सुबक कर रो उठे। मैं हवा करने लगा, ईश्वर महाराज (स्वामी भुवनेश्वरानन्द) पैर पर हाथ फेरने लगे। बहुत देर बाद महाराज स्वाभाविक अवस्था में आये एवं पूरा नाटक न देखकर हॉल से बाहर आ गये, सीधा बलराम मंदिर में आकर सो गये, कुछ भी नहीं खाए। हम लोग उनके इस गंभीर एवं निश्चल भाव को देखकर संत्रस्त रहते। दूसरे दिन भी उनके इस भाव का उपशम नहीं हुआ। दक्षिणेश्वर से रामलाल दादा को बुलाया गया। उन्होंने आकर महाराज के साथ अनेक हँसी मजाक किया, हाथ-पैर हिलाकर घूँघट ओढ़कर महिलाओं के से अभिनय दिखाने लगे। यह सब देखकर पूजनीय महाराज छोटे बच्चे के समान

हँसते हुए लोटपोट हो गए। पहले का वह भाव चला गया।

महाराज की सहनशीलता का गुण उनमें जन्मजात था। नापसन्द कुछ घटने से वे गंभीर अवश्य हो जाते किन्तु कभी भी विरक्त भाव का बाहर प्रकाश नहीं होता था। एक दिन बात बात में हम लोगों से कहा था, "तुम लोगों ने हमलोगों की कितनी सी गाली-गलौज खायी है? मैं स्वामीजी से जो गाली-गलौच खाया हूँ उसके शतांश का एक अंश भी तुम लोगों ने नहीं खाया। अवश्य दूसरे ही क्षण मेरा मन खराव देखने से ही स्वामीजी आकर मुझे आलिगन करते हुए कहते, तुमको गाली नहीं दूँगा तो फिर किसको दूँगा? मेरा और कौन है बोलो? तुम्हारे मुँह फुलाकर रखने से मैं जाऊँ कहाँ? तुम्हारे-मेरे लिए इन सब कामकाज की, मठ-वठ की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जो लोग उनके नाम लेकर आ रहे हैं वे सब जाएँगे कहाँ? यह सब समझेगा भी कौन, बोलो? इसलिए मेरी गाली-गलौज तुम खाओ। ठाकुर के पास से तो बहुत आदर पाया है।" यह सब कहकर हँसी-मजाक होती।" स्वामीजी ने ही महाराज को संघाध्यक्ष बनाकर कहा था, "राजा, तुमको 'राजा' बना दिया, अब दाय-दायित्व तुमको संभालना होगा। किस प्रकार राज्य रक्षा करेगा तू ठीक कर।" लाटू महाराज मजाक करके कहते, "तुम तो सत्रह बीघा जमीन का राजा है, लेकिन नरेन भाई तमाम दुनिया का राजा है।"

प्रतिदिन भोर में महाराज समस्त मठभूमि को प्रदक्षिणा करते। खेती, सेवापूजा, फूलफल का बगोचा, रसोईघर, गंगाघाट सब देखते एवं कहते, "स्वयं ठाकुर यहाँ पर जगत् सेठ के साक्षी के समान बँधे हुये हैं। स्वामीजी से उन्होंने कहा था, "तुम मुझे सिर पर रखकर जहाँ बिठाओगे मैं वहीं रहूँगा।" स्वामीजी ने अश्रुपूरित नयनों से ठाकुर के पूत पवित्र आत्माराम के कलश को सिर पर रखकर इसी मठभूमि पर लाकर नीम पेड़ के नीचे बिठाकर खीर का भोग निवेदित किया था। [अभी जहाँ पर उत्सव के समय बड़ा पंडाल लगता है उसके पीछे जो गुलाब बाग है उसी के किनारे वह नीम पेड़ था। उसके पास से ही एक नाला गंगा की ओर गया था।] कहा था, "आज से युग युग तक तुमको यहाँ से ही कृपा करुणा का वितरण करना होगा।" स्वामीजी का रुदन मानो रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। ठाकुर को बिठाकर स्वामी जी का वह क्या ही रुदन था।"

राजा महाराज की उदार दृष्टिभंगी ठाकुर की शिक्षा का ही परिणाम था। केरल में देखा था, वहाँ के भक्तों के आचार-व्यवहार, खान-पान संस्कृति वे दिल से ग्रहण करते एवं सम्मान देते थे। मुझे एक वृद्धा के पास, करम्ब, रसम, आवियाल उपमा (दक्षिण भारतीय खाना)—यह सब सीखने के लिए भेजते थे। स्वयं तृप्ति पूर्वक खाते भी थे। कर्णाटक में अवस्थान करने के समय एक नामी संगीतज्ञ के पास कर्णाटक-संगीत सीखने के लिए कहा था। रामनाम संकीर्तन के "कन-काम्बर" स्तव को अच्छी तरह सीख लेने के लिए कहा। मठ में भी देखा है, विजिटर्स रूम में काली कीर्तन अभ्यास के समय वे गंगा किनारे के बरामदा में बैठकर सुनते, भूल होने से वे दरवाजा के पास खड़े होकर कहते, "क्या रे, तुम लोग आज क्या भाँग खाकर कीर्तन आरम्भ किया है?" परन्तु जब अच्छी तरह कीर्तन किया जाता तो प्रसन्न मन से उपभोग करते एवं ताली बजाते।

मद्रास में, महाराज एक भक्त परिवार के अनुरोध पर उनके घर गये थे। वे लोग रामानुज पंथी थे। महाराज को घर के आँगन में स्टूल के ऊपर बैठाकर विभिन्न प्रकार के उपचार देकर वरण करके, आरती करके, दूध-मलाई-मक्खन

खिलाकर उनके चारो तरफ नाच-गान बहुत देर तक हुआ। महाराज ने भी स्निग्ध कोमल दृष्टि से उनकी यह पूजा ग्रहण की। बाद में उनके विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दो-चार शब्दों में सुन्दर ढंग से समाधान करते हुए दिया। महिलाओं ने तमिल भाषा में प्रश्न किया था। एक भक्त प्रश्नों का अंग्रेजी अनुवाद कर दे रहे थे और महाराज अंग्रेजी में उनका उत्तर दे रहे थे। एक तमिल प्रश्न का अनुवाद महाराज को पसंद नहीं आया। महाराज ने भक्त से कहा, "नहीं, आपका अनुवाद ठीक नहीं हुआ है, इस प्रकार होगा।" जो महिलाएँ थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानती थीं वे एक साथ बोल उठीं, "महाराज ठीक कह रहे हैं।" महाराज भक्तों के भाव समझते थे। उस जगह भाषा कोई कठिनाई पैदा नहीं करती थीं। मद्रास मठ में रहने के समय महाराज सेवकों को प्रायः ही कहते, "अच्छी तरह शास्त्रादि पढ़ना, नहीं तो दृष्टिभंगी विशाल नहीं होगी। श्री श्री ठाकुर की कृपा से वह सब हम लोगों को विधिवत् पढ़ना नहीं पड़ा है। शास्त्रस्वरूप ठाकुर ने ही तो हम लोगों को कदम-कदम पर सब शिक्षा दे दी है। कहते हैं न, 'पढ़ने से अच्छा है सुनना, सुनने से अच्छा है देखना।" हम लोगों ने उन्हें देखा है, उनके श्रीमुख से बातें सुनी हैं, बाद में शास्त्र पढ़कर मिलाया है। अद्‌भुत! वह तो तुम सब धारणा कर नहीं सकोगे बच्चों, इसीलिए शास्त्रादि पढ़ने के लिए कहता हूँ। इन सब स्थानों पर अनेक पंडित हैं, जो थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानते हैं, उनके पास जाकर पढ़ो। सब समझ में नहीं आने से भी शास्त्र की बातें हैं तो 'श्रवणमंगलम्'—बाद में भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' हो जाएगा।" हम लोगों के बीच एक ने कहा, "क्यों हम लोग तो आपको देख रहे हैं। आपकी बातें सुन रहे हैं, इससे ही हो जाएगा ऐसा हमें विश्वास हैं।" तब महाराज ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया, "हाँ, विश्वास यदि है तब तो अच्छा है, परन्तु यह 'विश्वास' बड़ा ही नाशवान है, इसीलिए ये सब बातें कह रहा हूँ। हम लोग जो कहते हैं बिना तर्क के निःसंशय से ग्रहण और पालन करने से तुम लोगों का कल्याण छोड़ अकल्याण नहीं होगा, यह जान लो।" इसके बाद महाराज गंभीर हो गये। हम सभी उनके पैरों के पास बैठकर निःशब्द ध्यान-जप करते रहे। महाराज के मद्रास में कुछ महीने रहने तक हम सबने एक पंडित के पास उपनिषद् अध्ययन किया था। महाराज बार बार कहते, "शास्त्रपाठ अत्यन्त आवश्यक है। स्वामी जी कहते, विद्या चर्चा नहीं रहने से मठ हीन दशा को प्राप्त होता है।" मठ में विद्याचर्चा का जो ट्रेडिशन है वह स्वामी जी महाराज एवं ठाकुर के अन्य शिष्यगणों की प्रेरणा एवं उत्साह से ही बना है। मात्र विद्या चर्चा का ट्रेडिशन ही नहीं, पुराने सब ट्रेडिशन भी उन लोगों ने गढ़ा है। मठके सब नियमों एवं ट्रेडिशनों का एक कारण है। इसीलिए पुराने नियम या ट्रेडिशन को तोड़ते देखने में हम लोगों को कष्ट होता है। ठाकुर के भोग आदि में त्रुटि होने से वे लोग विरक्त होते थे। उनलोगों से सुना है, "पूजा-अर्चना, भोगराग, साधन-भजन सब कुछ की सार्थकता तभी है, यदि भाव को पकड़ कर चल सको। भावविहीन जो भी करोगे सभी भस्म में घृत आहुति के समान वृथा होगा। भावमय अनुष्ठान, क्रियाकर्म तुमको महत्व की ओर, देवत्व की ओर आगे बढ़ा ले जाएगा; वह यदि नहीं हो सका तो जीवन का प्रारम्भ जहाँ, अन्त भी वहीं होगा।

भुवनेश्वर मठ में साल, सागोन, आम, चीकू, कामरांगा (एक खट्टा फल), कटहल पेड़ की ओर देखते हुए महाराज कहते, "इस शीत काल में यहाँ बहुत से पक्षी आएँगे।" कुछ पक्षियों को दिखाकर कहते, "ये दोयेल (एक गाने वाली छोटी चिड़िया)

पक्षी हैं, यह कठफोड़वा, यह है फिंगा (एक चिड़िया) और उधर है उल्लू।" बाद में जब मैं भुवनेश्वर मठ की जिम्मेदारी लेकर था तब महाराज की वे सब बातें याद आतीं। दोपहर में चारों तरफ निर्जन रहता। उल्लू अपने आप आवाज करते रहता, उसके बीचे बीच में दोयेल पक्षी और फिंगे की आवाज आती। तब मन अत्यन्त उदास हो जाता। मन में आता इस जगत्-संसार में कौन किसका है? कैसा आश्रम? दण्ड-कमण्डलु लेकर निकल जाने की इच्छा होती है। फिर सोचता, महाराज कितने ने परिश्रम से यह मठ किया है। साधु एवं भक्तगण आकर ठाकुर का नाम करेंगें, उनका नाम पूरे संसार में फैलेगा। जिज्ञासु व्यक्ति का उद्धार हो जाएगा। मात्र अपना सुख, अपनी मुक्ति तो ठाकुर, माँ, स्वामी जी एवं अन्य महाराजों का उद्देश्य नहीं है। इसीलिए तो स्वामी जी हम लोगों को यह महामंत्र दे गये हैं, "आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च" एवं "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।"

(क्रमशः)

मुसलमानों में अमजद नाम का एक व्यक्ति था। माँ ने उसे खाने के लिए बुलाया। वह बरामदे में बैठा और माँ की भतीजी नालिनी उसे खिलाने लगी। जातीय दुराग्रह के कारण वह दूर से फेंक-फेंक कर उसे परोस रही थी। इस पर माँ ने कहा कि सब सामग्री मुझे दे दो। यह खिलाने का तरीका नहीं है। इस तरह के भोजन को कभी कोई मन से नहीं ग्रहण करेगा। खाने के बाद माँ ने उस स्थान को स्वयं धोया। नालिनी ने कहा कि इस तरह तो तुम जाति से निकाल दी जाओगी। माँ ने उसे डाँटते हुए कहा कि चुप रहो। 'अमजद भी उसी तरह मेरी सन्तान है जिस तरह शरत (स्वामी शारदानन्द जी) मेरी सन्तान है।'

भगिनी निवेदिता की शिक्षा-प्रणाली

ज्योति बहन थानकी

भगिनी निवेदिता के ज्ञान, विद्वता एवं गुरु के प्रति समर्पित भाव से प्रभावित होकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनसे पूछा—'क्या आप मेरी बेटी को पढ़ाने के लिए हमारे यहाँ आएँगी ?" उन्होने पूछा—"आप उसे कौन-सी शिक्षा देना चाहते हैं ? अँग्रेजी और अँग्रेजी द्वारा जो शिक्षा दी जाय वही।" ठाकुर ने माना कि अँग्रेजी भाषा में निपुणता रखनेवाली विदेशी विदुषी नारी के संपर्क से अपनी बेटी भी उनके समान ही विदुषी बन सकती है। परन्तु भगिनी निवेदिता ने अँग्रेजी भाषा के महत्त्व की बजाय मातृभाषा में दी जानेवाली शिक्षा के गौरव को बताते हुये कहा—"बाहर से कोई भी शिक्षा देने से क्या लाभ ? जातिगत निपुणता और व्यक्तिगत विशेष शक्ति के रूप में मनुष्य में जो वस्तु पड़ी है उसे जागृत करना ही सही अर्थ में शिक्षा है ऐसा मैं मानती हूँ। नियमबद्ध विदेशी शिक्षा के द्वारा उसे दबा देना मुझे उचित नहीं लगता।" मनुष्य में अवस्थित आंतरिक शक्ति को जागृत करना शिक्षा का उद्देश्य है। और मातृभाषा के द्वारा यह कार्य अच्छी तरह हो सकता है। यह बात भगिनी निवेदिता ने ठाकुर को स्पष्ट रूप से समझा दी। इसलिए ठाकुर उनके व्यक्तित्व से सविशेष प्रभावित हुये और उन्होंने भगिनी निवेदिता को बहुत ही आग्रह किया कि आप जिस तरह चाहें उसी प्रकार मातृभाषा द्वारा मेरी बेटी को सिखायें।

यह तो बंगाल के सुप्रसिद्ध ठाकुर परिवार का निमंत्रण था। भगिनी निवेदिता के लिये यह बड़े गौरव की बात थी। बंगाल के उच्च और भद्र गृहस्थ समाज में उनके व्यक्तित्व को सम्मानपूर्ण स्वीकार की बात थी। ठाकुर परिवार में प्रवेश मिलने से उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि बहुत-सी कठिनाइयों का अंत हो जाने की पूरी संभावना थी। अतः ठाकुर की बात सुनकर एक क्षण के लिए रुक गयी और बाद में बोली, "नहीं, यह मेरा काम नहीं" क्योंकि उन्हें तो सामान्य बंगाली समाज की असंख्य बालिकाओं के हृदय में शिक्षा के लिए चेतना जाग्रत करनी थी। इस सम्बन्ध में ठाकुर ने लिखा है कि "भगिनी निवेदिता ने तो बाग बाजार की कुछ गलियों में आत्म-निवेदन किया था। वहाँ वे केवल शिक्षा देनेवाली नहीं थीं, वरन् जागृत करनेवाली थीं।" और सचमुच बाग बाजार की १७ (सत्रह) नम्बर की गली में आयी हुई कन्या विद्यालय की बालिकाओं के हृदय में उन्होंने शिक्षा जागृत की परन्तु इसके लिए उन्हें भारी संघर्ष करना पड़ा था।

भगिनी निवेदिता भारत आने से पहले इंगलैण्ड में कुमारी मार्गरेट नोबल से परिचित थीं। उस समय भी एक प्रगतिशील शिक्षिका के रूप में वे प्रसिद्धि पा चुकी थीं। शिक्षा का कार्य उनका मनपसन्द कार्य था। उसमें निरन्तर अध्ययन, अध्यापन होता रहे तो सतत प्रगति हो सके और साथ-साथ असंख्य विद्यार्थियों के जीवन बनाने के कार्य भी हो सके इसलिए अध्ययन के बाद उन्होंने शिक्षा का क्षेत्र चुना था। उत्तम शिक्षा कैसे दी जाय इसलिए शुरू से ही उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में नित्य नवीन प्रयोग किये थे। उस समय नूतन शिक्षा के लिए ये अध्यापक पेस्टालॉजी के कई प्रयोग सफल हुये थे। उनके शिष्य फॉयबूले ने इस प्रकृति का अच्छी तरह विकास किया था। भगिनी निवेदिता को इस नयी शिक्षा में रस जागृत होते ही उन्होंने इस दिशा में प्रयोग किये। उनके नूतन शिक्षा के विचारों से श्रीमती डी० लाउडे प्रभावित हुई थीं। इसलिए लंदन में आकर इस पद्धति के अनुसार स्कूल चलाने का उन्हें निमंत्रण दिया। उसके अनुसार उन्होंने रस्किन स्कूल प्रारम्भ किया। उनकी यह नूतन पद्धति बालकेन्द्री थी। उनमें शिक्षकों को पाठ पढ़ाना नहीं था परन्तु विद्यार्थियों के लिए वातावरण खड़ा करना था। ऐसे वातावरण में विद्यार्थी स्वयम् अध्ययन करें और शिक्षकों का मार्गदर्शन प्राप्त करें।

उनका मानना था कि इस शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों की शक्ति का पूरा विकास होता है। इस नूतन पद्धति में शिक्षक का क्या फर्ज है यह समझाते हुये कहा था कि "शिक्षक के लिए प्रथम आवश्यक वस्तु यही है कि उन्हें शिष्य की चेतना में प्रवेश करके यह जानना कि वह कहाँ है और किस दिशा की ओर प्रगति कर रहा है। यह जानने से पहले कोई भी पाठ पढ़ाया नहीं जा सकता।" बालक की चेतना की स्थिति जाने विना शिक्षक पाठ समझा दे और बच्चे वह याद कर ले ऐसी शिक्षा में भगिनी निवेदिता को बिलकुल श्रद्धा नहीं थी। स्वामी विवेकानन्द से मिलने से पहले ही शिक्षा सम्बन्धी उनके ऐसे विचार थे। इस क्षेत्र में उन्होंने गहन चिन्तन, मनन और कार्य भी किया था। भले शिक्षा सम्बन्धी उनके विचार पश्चिम की संस्कृति में से उदित हुये थे, परन्तु सत्य दर्शन में कभी पूर्व या पश्चिम के भेद नहीं थे। बालक के सुषुप्त आंतरिक शक्ति को प्रकट करना, उनका सर्वांगीण विकास करना और मनुष्य को सही रूप में मनुष्य बनाना इसी प्राचीन भारतीय शिक्षा का आदर्श भगिनी निवेदिता के विचारों में से स्पष्ट हो रहा है। स्वामी विवेकानन्द के—उनके गुरुदेव के सानिध्य में इस आदर्श को भारत की भूमि पर बालिकाओं के जीवन में चरितार्थ करने का उनको मौका मिला।

लंदन में स्वामीजी का परिचय होने के बाद और उनका गुरु के रूप में स्वीकार करने के बाद एक वार्तालाप में स्वामीजी ने उन्हें कहा था, "मेरे देश की स्त्रियों के लिए मेरे पास योजना है। और मुझे लगता है कि उसमें आप बहुत मदद सिद्ध हो सकती हैं।" परन्तु उस समय भगिनी निवेदिता को मालूम नहीं था कि यह योजना कौन-सी है? परन्तु बाद में एक पत्र में स्वामी जी ने इस सम्बन्ध में स्पष्टता करते हुये लिखा, मैं आपको स्पष्ट रूप से कह देता हूँ कि भारत के कार्य में आपका भविष्य महान् है, उसका अब मुझे विश्वास हो गया है। भारतवासियों के लिए विशेष रूप से भारत की स्त्रियों के लिए कार्य करने के लिए आवश्यकता थी वह पुरुष की नहीं, स्त्री की थी। सही अर्थ में सिंहनी की थी। भारत अब भी महान् स्त्रियों को उत्पन्न नहीं कर सकेगा। उसको अन्य प्रजा में से स्त्री कार्यकरों को उधार लेना पड़ेगा। आपकी शिक्षा, अंतर का सत्य, पवित्रता, गहरा प्रेम, संकला और सविशेष तो आपकी सेन्ट जाति की शक्ति जिस जाति के स्त्री कार्यकर्त्ताओं की जरूरत है वैसे ही आपको बनाते हैं।"

भारत में स्त्रियों का उद्धार समर्थ स्त्री ही कर सकेगी ऐसा लगते ही स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता को भारत आने का निमंत्रण दिया। परन्तु इससे पहले उन्होंने भारत की आबोहवा, रूढ़ियों और वातावरण सम्बन्धी परिचय दे दिया था। भगिनी निवेदिता भी भारत आकर कन्या विद्यालय की स्थापना करने के लिये उत्सुक थी। परन्तु इस सम्बन्ध में स्वामीजी उन्हें जल्दी कराना नहीं चाहते थे। भारत के वातावरण के साथ ओतप्रोत हो जाय इसलिये उन्होंने भगिनी निवेदिता को पूरा समय दिया। देश का परिभ्रमण, अवलोकन और निवास द्वारा जब वे हिन्दू संस्कृति से सम्पूर्ण रूप से रंग गयी तब उन्होंने भगिनी निवेदिता के निवास-स्थान के पास ही कन्या विद्यालय के प्रारम्भ सम्बन्धी अनुमति दी।

१४ नवम्बर, १८९८ सोमवार, काली पूजा के दिन श्री माँ शारदा देवी के वरदहस्त से शाला का उद्घाटन हुआ। श्री माँ ने पूजा विधि करके आशीर्वाद दिये। इस स्कूल पर माँ काली के आशीर्वाद बरसे और यहाँ बालिकाएँ, आदर्श बालिका के रूप में तालीम प्राप्त करे। श्री माँ के आशिर्वाद से शुरू हुई परन्तु आज यह शाला 'श्रीराम कृष्ण शारदा मिशन भगिनी निवेदिता' के रूप में कलकत्ता शहर की सुप्रसिद्ध कन्या विद्यालय के रूप में लोकप्रिय बन गयी हैं।

भगिनी निवेदिता की इस शाला में उस समय लेखन, वाचन के अतिरिक्त हस्त उद्योग, कला, चित्र-काम, मिट्टी काम, सिलाई आदि शिक्षा भी दी जाती थी। बालिकाओं को शाला में लाने, ले जाने के लिए एक

सेविका बहन की व्यवस्था की गयी थी। उस समय बंगाल में कन्या विद्यालय की अन्य संस्थाओं द्वारा जो शिक्षा दी जाती थी, उसमें बंगाल की मात्र साढ़े छह प्रतिशत बहनें ही हिस्सा लेती थी। अतः भगिनी निवेदिता चाहती थीं कि कन्या शिक्षा द्वारा सभी कन्याओं को शिक्षा देनी चाहिए। परन्तु यह शिक्षा बाहर से डाली हुई नहीं होनी चाहिए। सरकार की ओर से जबरदस्ती दी जानेवाली शिक्षा भी नहीं होनी चाहिए, परन्तु प्रजा की चेतना के अनुरूप होनी चाहिए और उसकी आवश्यकता भी प्रजा के भीतर से जागृत होनी चाहिए। उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी जो दर्शन प्रकट किया वह मात्र कन्या सम्बन्धी या अमुक देश अथवा मात्र स्थल के लिए मर्यादित नहीं था। वह दर्शन कोई भी स्थल या समय की शिक्षा से इतना ही लागू होता है, जितना उस समय में लागू पड़ता था। उनके शिक्षा सम्बन्धी दर्शन को हम आठ मुद्दे में इस तरह बाँट सकते हैं—

(१) शिक्षा भीतर से जागृत होना चाहिए—

जैसे चेतना का विकास भीतर से होता है, वैसे शिक्षा भी चैतन्य को जागृत करने वाली होने से वह भी सदैव भीतर जागृत होनी चाहिए। उसका विकास स्वयंभू होना चाहिए। उसमें केवल सीखनेवालों की इच्छा और आंतरिक मंथन होना चाहिए। शिक्षा भीतर से उत्पन्न होकर विकसित होनी चाहिए। बाहर से कुछ सिखाया नहीं जाता। वे कहते हैं, "शिक्षा का कार्य शिष्य द्वारा होना चाहिए। शिष्य का कोई स्वयं स्फूरित कार्य उसका संकेत देता है, और सयाने शिक्षक उसका लाभ उठाते हैं। यदि उसकी शुरूआत शिष्य की ओर से नहीं होती तो उसे पढ़ाना लकड़ी और ईंट को पढ़ाने के बराबर होगा।

(२) शिक्षा प्रत्येक देश की जीवन पद्धति के अनुसार होनी चाहिए—

प्रत्येक देश को अपनी विशिष्ट धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक प्रणालियाँ होती हैं। बाहर से लदी हुई शिक्षा द्वारा इस प्रणाली में खटपट नहीं करनी चाहिए। इससे शिक्षा में सुधार नहीं होता बल्कि शिक्षा में विकृति आती है। प्रत्येक देश को अपनी शिक्षा-पद्धति निश्चित करने का अधिकार है। और इनका गौरव भी है। इसलिए भगिनी निवेदिता ने कभी भी भारत की एक भी तत्कालीन संस्थाओं की प्रणालिकाओं की निन्दा नहीं की थी।

(३) शाला और घर के बीच सभाविता होनी चाहिए—

बच्चे शाला में जो आदर्श सीखते हैं उसी के अनुरूप घर का वातावरण होना चाहिए। शाला में बच्चे कम समय रहते हैं जबकि घर पर अधिक समय बीताते हैं। अतः वह मानती है कि शाला से घर का महत्व अधिक है। भारतीय नारी को उसे अधिक अच्छी भारतीय नारी बनाये ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। इसलिए भारतीय आदर्श, उसकी प्राप्ति, उसकी जानकारी यह सब उसके जीवन में चरितार्थ करें। वैसा ज्ञान मिले, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। इन सभी को घृणित समझकर उसे सामाजिक या नैतिक अव्यवस्था में छोड़ दे ऐसी शिक्षा नहीं होनी चाहिए। पारिवारिक परंपरा, धर्म, किफायत, सम्मान, राष्ट्रीय विभूतियों के प्रति आदर, महाकवियों की पुराणकथाओं का पाथेय भारत को गढ़नेवाली इन बातों का ज्ञान कन्याओं को मिलना चाहिए। उसका मूल स्रोत घर है, उसके बाद शाला है।

(४) शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जानी चाहिए और वह हेतुलक्षी होनी चाहिए—

बच्चों के लिए मातृभाषा सहज होती है उसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षा से उसकी चेतना में सबकुछ जल्दी से ग्रहण होता है। अतः उनका यह मानना है कि शिक्षा तो मातृभाषा द्वारा ही देनी चाहिए। और अंग्रेजी भाषा तथा उनका साहित्य भी सिखाना चाहिए। उन्होंने बच्चों को निम्नलिखित विषयों को सिखाने पर बल दिया है—

(१) मातृभाषा और उसका साहित्य।

(२) अंग्रेजी भाषा और उसका साहित्य।

(३) गणित।

(४) विज्ञान ।

(५) हस्तकला तालीम ।

भगिनी निवेदिता प्राचीन उद्योग एवं कलाओं को पुनर्जीवित करना चाहती थीं । उन्होंने यह भी कहा था कि हस्तकला एवं गृह-उद्योग के द्वारा पढ़ाई करनेवाले विद्यार्थी गृहकार्य करके अपना खर्चा निकाल सकते हैं इसलिए हस्तकला तालीम अत्यन्त आवश्यक है । उनकी शाला में हस्तकला की तालीम दी जाती थी । गांधीजी ने पीछे से शिक्षा में जो नयी तालीम और बुनियादी शिक्षा का प्रयोग किया वह प्रयोग आज से एक सौ वर्ष पहले भगिनी निवेदिता ने अपने कन्या विद्यालय में किया था ।

(५) बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके ऐसी शिक्षा होनी चाहिए—

शिक्षा के द्वारा बच्चों के मन का ही नहीं परन्तु उनकी आंतरिक शक्ति का, ऊर्मियों का, संवेदनों का, कार्य शक्तियों का, शरीर का—इन सबका विकास होना चाहिए । उनकी इस शिक्षण पद्धति की नींव जर्मनी की किंडर गार्डन पद्धति पर डाली गयी हैं । जिसके केन्द्र में बालक रहता है । परन्तु वह इस बात में स्पष्ट थीं कि यूरोप के किंडरगार्डन और भारत के किंडरगार्डन दोनों अलग अलग हैं । उन्होंने भारतीय जीवन का विकास हो इस तरह किंडरगार्डन शिक्षा को भारतीय साँचे में ढाला । इस सम्बन्ध में एक पत्र में उन्होंने लिखा था, "जर्मनी में जिस ढंग से किंडरगार्डन का उपयोग हुआ, उसी रूप में भारत उसे गले नहीं उतार सकता, परन्तु जिसका हेतु समान हो ऐसी एक पद्धति का भारत विकास कर सकता है जैसे कि मिट्टी के नमूने बनाना, कागज पर कला कारीगरी करना, रंगोली चित्रकाम आदि गृह-कलाएं विद्यालय में सिखायी जा सकती है ।"

भगिनी निवेदिता हिन्दुओं की धार्मिक शिक्षा को केवल धर्म की ही नहीं परन्तु घर-संसार और सामजिक गढ़न की संपूर्ण शिक्षा मानती हैं । उन्होंने कहा है कि ईश्वरीय शक्ति की अनुभूति को बौद्धिक दृष्टि से प्रकट करने के लिए मूर्ति एक नींव के रूप में है । बालिकाओं के व्रत, गो-पूजा जैसी अनेक बातों में हिन्दुत्व का विचार-धारा का सम्पूर्ण निखार है । सही मार्ग का आरम्भ वहीं से करना है । और यदि संभव हो तो वहाँ से भी आगे बढ़ना है । शिक्षा का आरंभ इस तरह तालीमबद्ध ध्यान और मन को एकाग्र करने की शक्ति में उसका ओर हो, जिसको भारत समझ सकता है, यूरोप नहीं ।" इस प्रकार उन्होंने कहा है कि भौतिक और अभौतिक द्वारा परा और अपरा विद्या की शिक्षा देनेवाली भारतीय शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है ।

(६) शिक्षा राष्ट्रीय चेतना को जागृत करनेवाली होनी चाहिए—

भगिनी निवेदिता दृढ़ रूप में मानती हैं कि शिक्षा मात्र राष्ट्रप्रेम जागृत करनेवाली ही नहीं, परन्तु उसमें वृद्धि एवं विकास करनेवाली होनी चाहिए । इसलिए उन्होंने इतिहास की शिक्षा को महत्व दिया है । देश के ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन के उदाहरण द्वारा विद्यार्थियों में राष्ट्रभक्ति का सिंचन कर सकते हैं । उन्होंने अपने विद्यालय में बालिकाओं के अन्तर में राष्ट्र-प्रेम जागृत हो सके ऐसे अथक प्रयत्न किये थे ।

(७) प्रवास और पर्यटन के द्वारा शिक्षा को सजीव रूप देना—

भगिनी निवेदिता वर्ग की चारदिवारों के बीच दिये जानेवाली शिक्षा के समान ही प्रवास एवं पर्यटन द्वारा दी जानेवाली शिक्षा का महत्व मानती हैं । प्रवासों के द्वारा इतिहास एवं भूगोल का ज्ञान, वैसे ही देश और समाज का ज्ञान विशेष दृढ़ बनाता है । इतना ही नहीं परन्तु उसके द्वारा विद्यार्थियों का जीवन गठीला बनता है । उनमें परस्पर प्रेम, हिम्मत, सहनशीलता, उदारता, कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति—ये सभी सद्गुणों का विकास होता है । प्रकृति के मुक्त वातावरण में विद्यार्थियों का जो जीवन बनता है वह वर्ग के बन्द वातावरण में नहीं हो सकता । इसलिए उन्होंने प्रवास पर्यटन की शिक्षा को अत्यन्त महत्व का स्थान दिया है ।

(८) शिक्षा में शिक्षक तथा विद्यार्थी के बीच आंतरिक सम्बन्ध आवश्यक है —

जहाँ तक शिक्षक विद्यार्थी को नहीं समझ सकता वहाँ तक उसने दी हुई शिक्षा विद्यार्थी के अन्तर में प्रवेश नहीं पा सकती। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आंतरिक सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। एक बार शिक्षक विद्यार्थी की चेतना को स्पर्श कर लेता है फिर शिक्षा का कार्य शुरू हो जाता है। बाद में वह विद्यार्थी के अंतर में शिक्षा की भूख जगा सकता है। और इसके बाद शिक्षा की कोई समस्या उत्पन्न ही नहीं होती। मनुष्य में प्रथम से स्थित पूर्णता का प्रकटीकरण ही शिक्षा है। स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को भगिनी निवेदिता ने अपने जीवन में उतारे थे। उनका मानना था कि गुरु या शिक्षक भेड़-बकरियों को हाँकने वाले नहीं, परन्तु वे तो माली होते हैं। जैसे माली पौधे की देखभाल करते हैं वैसे शिक्षक अपने विद्यार्थियों की देखभाल करते हैं। उनके मार्ग में रुकावट डालने वाली बाधा-मुसीबतों को दूर कर उनके विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाना चाहिए। जैसे माली जबरदस्ती पौधे को सींचकर उसका विकास नहीं कर सकता वैसे शिक्षक भी जबरदस्ती बच्चे को पढ़ा नहीं सकता। शिक्षक को तो विद्यार्थियों की आंतरिक शक्ति को प्रकट करने के कार्य में आनेवाली बाधाओं और संयोगों की विषमताओं को दूर करके सहायक बनना है। जब शिक्षक विद्यार्थियों की आत्मा को स्पर्श करके उन्हें महान् चैतन्य के सम्पर्क में पहुँचा सकेंगे तब शिक्षा सच्चे अर्थ में फलीभूत होगी। उसके लिए शिक्षकों का स्वयं का जीवन भी महान बोधरूप होना चाहिए। शिक्षक स्वयं ही उन महान् चैतन्य के स्पर्श से आलोकित होना चाहिए और तब ही वे शिष्यों की चेतना में प्रवेश कर सकेंगे।

भगिनी निवेदिता का यह शिक्षा-दर्शन तथा उनका जीवन भी भारत के ऋषियों के जीवन और दर्शन से भिन्न नहीं दिखाई देता था।

भगिनी निवेदिता का अपना जीवन ही उनकी विद्यार्थिनियों के लिए एक महान् आदर्श रूप था। शाला में आनेवाली प्रत्येक विद्यार्थिनी के साथ उनको आत्मीय सम्बन्ध था। शाला के समय वह प्रतिदिन सुबह में विद्यालय के दरवाजे के पास आकर खड़ी रहती थीं। और सस्मित चेहरे से बालिका का स्वागत करती थीं। उनके मधुर स्मितयुक्त दर्शन से बालिकाओं में चैतन्य का प्रसार हो जाता था। शाला के कार्य का शुभारम्भ प्रार्थना से तथा बाद में 'वंदेमातरम्' के गीत से होता था। उस समय उन्होंने अपनी विद्यार्थियों को 'भारत को चाहो' यह मंत्र दिया था। उन्होंने विद्यार्थियों को कहा था, "हमारे भारत देश का हित ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए। सोचिये कि यह समग्र देश तुम्हारा है और तुम्हारे देश को कार्य की जरूरत है। ज्ञान के लिए प्रयत्न कीजिए, शक्ति के लिए, आनन्द के लिए और समृद्धि के लिए प्रयत्न कीजिए। ये सब तुम्हारे जीवन का लक्ष्य बन जाय और जब युद्ध की पुकार उठे तब किसी भी परिस्थिति में निद्राधीन मत रहना।" वह स्वयं भी अति उत्कट रूप में भारत को चाहती थीं। अपना भारत प्रेम विद्यार्थियों में संक्रमित भी करती थीं। इसलिए वह स्वयं इतिहास पढ़ाती थीं। राष्ट्र के लिए जो कुर्बान हो गये हैं ऐसे देशभक्तों की बातें कहते समय ऐसी तन्मय बन जाती थीं कि स्वयं वर्ग खंड में यह भी भूल जाती थीं। एक दिन वर्ग में चितौड़ की बात करते-करते उन्होंने कहा, मैं आँखें बंद करके पद्मिनी का विचार करने लगी तो मैंने देखी पद्मिनी को चिता के पास खड़ी हुई देखी (चिता पर चढ़ते समय जीवन के अंतिम क्षण में उसके मन में उत्पन्न विचारों पर मैंने चिंतन किया।") इस प्रकार अपने अनुभवों के द्वारा, इतिहास के पात्रों के बलिदानों को ऐसे सजीव बना दिये थे कि विद्यार्थियों के अंतर में वे पात्र स्थायी बनकर उनमें देशभक्ति की प्रेरणा का सिंचन करने लगते थे। उन्होंने राजपूत स्त्रियों की बात करते हुये कहा, हे भारतवर्ष की पुत्रियों, तुम्हें क्षत्रिय नारी बनना चाहिए। इसके लिए शपथ लीजिए।" अपनी विद्यार्थिनियों, देश नेताओं के व्याख्यान सुन सके।

इसलिए उन्हें ब्रह्म समाज के स्कूल ले जाती थीं, वहाँ पास के बगीचे में होते हुये व्याख्यानों को अच्छी तरह सुन सकते थे। जब कलकत्ता में स्वदेशी चीजों का प्रदर्शन हुआ तब उनकी बालिकाओं ने अपनी बनायी हुई चीजें प्रदर्शन में रखी थीं। परदेशी माल का बहिष्कार करने के लिए वह आगे बढ़ी थीं। इस तरह राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए उन्होंने शिक्षा के माध्यम का पूरा उपभोग किया था, हिन्दू राष्ट्र की उनकी विभावना बहुत व्यापक थीं। उस सन्दर्भ में उन्होंने कहा था, "हिन्दू कहाना' यह धार्मिक विचार माना जाता है। परन्तु वह कोई संप्रदाय नहीं है, न कोई सामाजिक विचार है, न कोई जाति या समूह की सम्पत्ति है। वह तो है ऐतिहासिक उत्क्रान्ति कि जिसमें सब एक ही है। यह ऐसी वस्तु है जो सभी में है और वही मात्र भारत कहा जाता है। इस प्रकार उन्होंने भारत को सतत् विकसित रहनेवाली चेतना के रूप में माना था, जिसमें समग्र मानव जाति एक है। भारत की आत्मा पुनः जागृत बने इसलिए उन्होंने शिक्षा द्वारा प्रयत्न किया था। उन्होंने यह भी कहा था कि "हम सच्चे अर्थ में हिन्दू बनें। सबसे पहले तो इस महान् शब्द के अनुरूप बनने के लिये लायक बनना पड़ेगा। हमारे देश का नाम और हमारी श्रद्धा ही हमको ऐसा पुरुषार्थ करने का गौरव प्रदान कर सकते हैं।" उनकी ओजस्वी वाणी में प्रवाहित भारत की भक्ति ने असंख्य युवक-युवतियों के अंतर में मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाया और भारतमाता की मुक्ति के लिए कुर्बानी करने की प्रेरणा दी। इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "एक बात मैं सम्पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ वह यही है कि वर्त्तमान समय में हम जीवन में राष्ट्रीय भावना के जो अंकुर फूटते देख रहे हैं उनका प्रायः यश भगिनी निवेदिता को आता है।

शाला में आनेवाली प्रत्येक विद्यार्थियों के विकास में वह इतना गहन रस लेती थीं यह हम उनके बनाये हुये पत्रक पर से जान सकते हैं। उस पत्रक के दो उदाहरण देखें तो—"नाम है विद्युतवाला बोस : ६० में से ४५ दिन हाजिर। मैंने शायद ही देखी हो, ऐसी लड़की है। उसमें उत्साह और निश्चयबल अद्‌भुत है। उसका शौक उच्च कोटि का है। पहले वह सिर दर्द जैसी और उद्दण्ड थी। परन्तु उसके साथ शांति से बातचीत करने के बाद लगा कि उसके पास से काम लेने में एकमात्र स्मित-पूर्ण व्यवहार करती है। बाद में तो उसके पास से अनेक उत्तम एवं सुन्दर चीजें मिलती रही। उसमें आग जैसा जोश है और किसी भी परिस्थिति का सामना कर सके ऐसी प्रबल इच्छा शक्ति है। अलबत्ता, शादी के बाद शांत हो जायेगी। उसका सिलाई काम भी अच्छा है।"

दूसरी भी एक विद्यार्थिनी के लिए नोंध है; "थ एन एम : सुन्दर, मधुर, शांत, ६० में से ३१ दिन हाजिर। मैं जानती हूँ कि वह सभी बहनों में सबसे सुन्दर, होशियार और उत्तम है। वह अति एकांतप्रिय, साहस और कार्य में लीन रहनेवाली है। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थिनी की आंतरिक शक्ति, शौक, स्वभाव, विशिष्ट-ताएँ—सभी को वह नोंध रखती थीं। इतनी सूक्ष्म गहन नोंध तो उनकी माताओं ने भी नहीं रखी होंगी। वह मात्र नोंध लेकर रुकनेवाली नहीं थीं परन्तु उसको मालूम न हो इस तरह उसकी क्षतियों को दूर कर; उसकी आंतरिक शक्ति को जागृत कर देती थीं। विद्या-र्थिनियों के साथ उनका सम्बन्ध मात्र शाला समय तक ही मर्यादित नहीं था परन्तु शाला समय के बाद भी वह उनकी कठिनाइयों और समस्याओं को दूर करने के लिए उनके घर जाती थीं। गिरिबाला नामक एक बाईस वर्ष की विधवा को वह अपनी शाला में पढ़ने के लिये ले आयीं। वह कुछ ही दिन आयी बाद में एकाएक शाला में आती बन्द हो गयी, इसलिए उसके घर जाकर पूछताछ करने से पता चला कि वह उसके चाचा के घर से पढ़ने के लिए आती थी। उन्होंने उसे स्कूल में नहीं आने का कारण पूछा तो उसके चाचा ने कहा—एक तो विधवा और फिर इतनी बड़ी उम्र और स्कूल में पढ़ने

के लिए आये तो लोग उसकी तथा साथ में मेरी भी बातें करते हैं। हँसी भी उड़ाते हैं। अतः मैं उसे पढ़ने के लिए नहीं भेजूँगा।"

भगिनी निवेदिता ने उसके चाचा को बहुत समझाया और गिरिबाला की लम्बी जिन्दगी तथा भविष्य के बारे में कहा। फिर भी वह उसे भेजने के लिए तैयार नहीं हुये। उस समय भगिनी निवेदिता ने अपनी ओढ़ी हुई शाल गिरिबाला को ओढ़ाते हुये कहा : मेरी बेटी, इस शाल को ओढ़कर तुझे हमेशा शाला में आना है। अब कोई तुझे देख नहीं सकेगा ! दुःखी पीड़ित विधवाओं के हाल देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। महामाया नामक लड़की को क्षय रोग हुआ था। निवेदिता ने अपनी मर्यादित आमदनी में से उसकी दवाई एवं पथ्य के लिये पैसे दिये। इतना ही नहीं, परन्तु बाद में मालूम हुआ कि बच नहीं पाएँगी। तब वह अपने खर्च से जगन्नाथ पुरी में एक कक्ष किराये पर रखकर वहीं उसको रखने की व्यवस्था की गयी जिससे उसके अंतिम दिन शांति से बीत सके। ऐसी थी उनकी बालिकाओं के प्रति करुणा ! प्रफ्फुलमुखी उनके पड़ोस में रहनेवाली बाल विधवा थी। उन्होंने उसको भी शाला में दाखिल कर दी इसलिए वह शाला में आने लगी। बंगाल के रिवाज के अनुसार बाल विधवा को एकादशी का उपवास करना पड़ता था। प्रफ्फुल कुमारी को भी करना पड़ता था। भगिनी निवेदिता प्रत्येक एकादशी को प्रफ्फुल कुमारी को अपने घर बुलाकर फल एवं मिठाई खिलाती थीं। एक बार एकादशी के दिन उनको जगदीशचन्द्र बोस के घर पर जाना पड़ा, वहाँ उसने खाना खा लिया। बाद में अचानक एकादशी याद आते ही वहाँ न रूक कर तुरन्त ही घर वापस आ गयीं। फिर प्रफ्फुल कुमारी को बुलाकर फल एवं मिठाई देते हुए कहा : मेरी बेटी, आज एकादशी है वह तो मैं बिलकुल भूल गई और मैंने खाना खा लिया ! अरे रे ! तुम भूखी थी और मैंने खाना खा लिया। यह कितना अविचारी कहा जाता है !" इस प्रकार कितनी देर तक अफसोस करती रहीं। यह भी प्रेम द्वारा विद्यार्थियों की आत्मा को स्पर्श करने वाली उनकी शिक्षा। बाद में उन्हें विद्यार्थिनियों को सीधा उपदेश देने की जरूरत ही नहीं रहती। उनका जीवन ही विद्यार्थिनियों के लिए महान् बोधरूप था। उन्होंने अपनी आत्मा के गहन प्रेम से सभी विद्यार्थिनियों के हृदय को ऐसे जीत लिये थे कि विद्यार्थिनियों ने शाला में से जाना अच्छा नहीं लगता। एक रविवार को घर से बाहर कोलाहल हुआ। अतः इस सम्बन्ध में देखने के लिए नौकर को भेजा कि आज छुट्टी के दिन बाहर इतनी आवाज क्यों होती है ? नौकर ने वापिस आकर टूटी-फूटी अंग्रेजी में कहा कि लड़कियों को आज भी स्कूल जाना है। और आपके पास पढ़ना है। उन्हें छुट्टी अच्छी नहीं लगती।" यह सुनकर वह आनन्द विभोर हो गईं। उनकी शिक्षा का प्रमाण भूत सबूत अन्य क्या हो सकता है ? वह स्वयम् अपने आराम का, छुट्टी के दिन अपने आयोजन के अनुसार कार्य—इन सबका विचार छोड़कर बालिकाओं के स्वागत के लिये दरवाजे की ओर दौड़कर गईं ! और यही उनकी शिक्षा जगाने का कार्य था जो असंख्य बालिकाओं के अंतर में जागकर सिद्धि स्वरूप में उनके द्वार के पास खड़ा था।

श्री रामकृष्ण ज्योत
(शिक्षक विशेषांक से)

प्रश्न युवाओं के :

उत्तर स्वामी निखिलेश्वरानन्द के (२)

प्रश्न—हमलोगों ने सुना है कि स्वामी विवेकानन्द को इच्छा-मृत्यु का वरदान मिला था। तब फिर उन्होंने शरीर-त्याग क्यों किया? वे आज जीवित क्यों नहीं हैं? [कु० भूमिका बगद्वाल, ए० के० आई कॉलेज, अल्मोड़ा की छात्रा।]

उत्तर—कौन कहता है कि स्वामी विवेकानन्द आज जीवित नहीं हैं? वे बिल्कुल जीवित हैं, किन्तु एक सुन्दर रूप में। वे "आकार रहित एक आवाज हैं। आज भी वे अनेक को उत्प्रेरित और मार्ग-प्रदर्शित कर रहे हैं। उन अमर शब्दों का स्मरण कीजिए जो उन्होंने श्री एरिक हैमण्ड को कहा था, "हो सकता है कि मैं अपने शरीर से मुक्त हो जाने—इसे जीर्ण वस्त्र की भाँति छोड़ देने को बेहतर समझूँ। लेकिन मैं तब तक लोगों को सर्वत्र उत्प्रेरित करता रहूँगा जब तक संसार यह न समझ ले कि वह ईश्वर के साथ एकाकार है।"

प्रश्न—क्या लड़कियों के लिए संसार-त्याग करना, संन्यास ग्रहण करना उचित है? क्या संसार-त्याग किये बिना आपके संघ में सक्रिय योगदान करना संभव नहीं है? [सुश्री शोभा रावत, बी० टी० सी० गर्ल्स हॉस्टल, अल्मोड़ा की छात्रा।]

उत्तर—लड़कियाँ भी संसार-त्याग कर सकती हैं, संन्यासिनियाँ हो सकती हैं, सारदा मठ में योगदान कर सकती हैं। यदि कोई संसार त्याग करना चाहता है—चाहे संन्यासी या संन्यासिनी बनने के लिए—तो कई कठिनाइयाँ हैं। लेकिन 'जहाँ चाह वहाँ राह" है—शिव भाव से जीव की, या ईश्वर बुद्धि से मानव की सेवा करते हुए यदि किसी के पास अमर आनन्द का अमृत-पान करने तीव्र इच्छा है, तो वह कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा या लेगी। किन्तु सभी संसार का त्याग नहीं कर सकते और न करने की जरूरत ही है। तुम निश्चय ही बिना संसार का त्याग किये हुए ही हमलोगों के क्रियाकलापों में भाग ले सकती हो। अनेक गृही भक्त और स्वयं सेवक हमारे सेवा-कार्यक्रमों में हमें अपना सहयोग प्रदान करते हैं। लड़कियों के लिए सारदा मठ के क्रिया कलापों में सहयोगिता करना आसान और उत्तम है। सौभाग्यवश तुम्हारे लिये कसर देवी के निकट अल्मोड़ा में जहाँ स्वामी विवेकानन्द ने तपस्या की थी सारदा मठ की एक नयी शाखा खोली गयी है।

प्रश्न—लोग कहते हैं कि लड़कियों के लिए "तर्क-वितर्क करना उचित नहीं है।" क्या यह सच है?

उत्तर—"तर्क के लिए तर्क करना" सदा बुरा है—लड़का या लड़की किसी के लिए भी। किन्तु अपनी समझ की स्पष्टता के लिये तर्क करना सर्वदा सराहनीय है। भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानन्द से बहुत तर्क-वितर्क किया करती थी। स्वामीजी उनसे अप्रसन्न नहीं होते थे। अपना उदाहरण देते हुये उन्होंने कहा "स्वीकार करने के पहले मैं अपने गुरुदेव से छः वर्षों तक संघर्ष करता रहा। इसी से मैं इस मार्ग का कोना-कोना जानता हूँ।

प्रश्न—निराश की घड़ियों में, जब सत्यनिष्ठ बने रहना बड़ा महँगा साबित हो रहा हो, तब हमें क्या करना चाहिए ? [कु० निधि रावत तथा कु० निधि तिवारी, एडम्स गर्ल्स इंटर कॉलेज, अल्मोड़ा की छात्राएँ।]

उत्तर—श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "सत्य इस कलियुग की वास्तविक तपस्या है।" आज हम इस कथन की सार्थकता का स्पष्ट अनुभव करते हैं जब हम यह देखते हैं कि जो सत्य का पालन करते हैं, उन्हें कितना त्याग करना पड़ता है, कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं, और कितनी आलोचनाएँ सहनी पड़ती हैं। आजकल जो सत्य का व्यवहार और सत्य-आचरण करते हैं उन्हें "अव्यावहारिक" समझा जाता है। सचमुच सत्य का व्यवहार बड़ा महँगा व्यापार है परन्तु जिनका दृढ़ विश्वास है कि "अन्ततः सत्य को ही जीत होती है" ("सत्यमेव जयते" और सत्याचरण मनुष्य को परम सत्य—परमात्मा तक ले जाता है, उनके लिए कोई भी कीमत बहुत भारी नहीं होती।

प्रश्न—ईश्वर एक हैं, फिर उन्हें प्राप्त करने के इतने मार्ग क्यों हैं ? एक ही मार्ग क्यों नहीं ? सभी लोग अलग-अलग ढंग से क्यों सोचते हैं ? एडम्स गर्ल्स इन्टर कॉलेज, अल्मोड़ा की एक छात्रा।]

उत्तर—तुम क्यों चाहती हो कि प्रत्येक व्यक्ति केवल एक ही मार्ग का अनुसरण करें ? स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, अधिकाधिक मार्ग होने दो, ताकि लोगों को बेहतर विकल्प मिल सके—वे अपनी रुचि और प्रकृति के अनुसार अपने पथ का चयन कर सकें। अगर तुम एक खास प्रकार की मिठाई पसन्द करती हो, तो निश्चय ही इसका सभी उपायों से उपभोग करो, परन्तु यदि तुम्हारे मित्र दूसरी तरह की मिठाइयाँ पसन्द करते हैं तो उन्हें उन मिठाइयों का आनन्द लेने दो। तुम्हें अपनी पसन्द उन पर थोपना नहीं चाहिए। हर एक व्यक्ति को अपना पथ चुनने की स्वाधीनता होने दो, परन्तु झगड़े नहीं होने चाहिए। यदि सभी लोग यह जान लें कि सभी रास्ते एक ही सत्य—परमात्मा की ओर ले जा रहे हैं, तो विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मों के बीच होने वाले झगड़े समाप्त हो जाएँगे। इसका प्रदर्शन करने के लिए ही श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्मों—हिन्दू, इस्लाम, ईसाई आदि का क्रम से आचरण किया और उद्घोषणा की—"जतो मत, ततो पथ"—जितने मत हैं, उतने मार्ग हैं।"

प्रश्न—रामकृष्ण मिशन की स्थापना कब और कैसे हुई ?

[श्री अमित तिवारी, अल्मोड़ा इन्टर कॉलेज का छात्र]

उत्तर—रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द द्वारा १ मई १८९७ को की गयी। सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट २१ (१८६०) के अधीन इसका विधिवत पंजीकरण १९०९ ई० में हुआ। रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य जाति, धर्म, सम्प्रदाय, या राष्ट्रीयता का बिना विचार किये हुए सभी संभव उपायों से मानव का मंगल करना है। मनुष्य के सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने का प्रयास करना भी दूसरा उद्देश्य है जिसके लिए अनेक अस्पताल, राहत कार्य, ग्रामीण एवं आदिवासी विकास योजनाएँ, शिक्षण संस्थाएँ आदि शुरू की गयी हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भगिनी निवेदिता को लिखा था, "वस्तुतः मेरे आदर्श को चन्द शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है। वह है मानव जाति को उसमें अन्तर्निहित देवत्व की शिक्षा देना और यह बताना कि इसे वे अपने जीवन में हर क्षण कैसे व्यक्त कर सकते हैं।" रामकृष्ण मिशन में जो साधु या इसके शुभेच्छु के रूप में सम्मिलित होते हैं, इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं—आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च।" (अपनी मुक्ति तथा दूसरो के हित के लिए) रामकृष्ण मिशन के अनेक प्रकार के क्रियाकलापों

के पीछे समाज-सेवा का नहीं बल्कि शिव दृष्टि से जीव सेवा करने का भाव निहित है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में रामकृष्ण मठ और मिशन के १३७ शाखा-केन्द्र हैं। इसका मुख्यालय कलकत्ता के निकट वेलुड़ मठ है।

प्रश्न—यहां उत्तराखण्ड में वेकारी युवकों की एक बड़ी समस्या है। इन विषय परिस्थितियों में हम कैसे अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं ?

उत्तर—केवल उत्तराखण्ड में ही नहीं, वल्कि भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों में वेकारी युवकों की एक प्रधान समस्या है "आवेदन, आवेदन, किन्तु कोई प्रत्युत्तर नहीं"—यही दशा है अनेक युवकों की। "स्व-नियोजन" (स्व-रोजगार) ही इस समस्या का समाधान है। अपने देश में शिल्पियों, कारीगरों आदि की बहुत माँग है। सरकार को ट्रायसेम (TRYSEM) योजना के अन्तर्गत या निजी तौर पर तुम कुछ रोजगार सीख सकते हो और लघु उद्यम शुरू कर सकते हो इस प्रकार तुम न केवल स्व-रोजगार पा सकते हो वल्कि दूसरों के लिए रोजगार का सृजन भी कर सकते हो। जो युवक शारीरिक श्रम करने को, कठिन परिश्रम करने को तैयार हैं उन्होंने कुछ उपार्जन करना शुरू कर दिया है। परन्तु अधिक युवक सफेदपोशी नौकरी, मुख्य रूप से सरकारी विभागों में या सार्वजनिक क्षेत्रों में नौकरी चाहते हैं क्योंकि वहां पद की सुरक्षा, अधिक वेतन अधिक छुट्टी और कम कार्य-करने की स्वाधीनता है। सीमित पदों के कारण स्वाभवत: आवेदकों की बड़ी भीड़ रहती है। सरकारी नौकरियों में सबका समावेश नहीं किया जा सकता अतएव युवकों को निजी क्षेत्र में या आत्म नियोजन के द्वारा नया मार्ग निश्चय ही ढूंढ़ना चाहिए। किन्तु इसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी। युवक तीन तरह के होते हैं—वृत्तियुक्त, वृत्तिहीन, और 'वृत्ति के अयोग्य"। "वृत्ति के अयोग्य" युवकों को वृत्ति पाने या स्वरोजगार करने के पहले अपनी कुशलता, क्षमता, लगन आदि बढ़ाकर वृत्ति के योग्य होना पड़ेगा।

प्रश्न—आपने अपने व्याख्यान में कहा कि स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि हम अपनी मातृभूमि को प्यार करें। क्या सारे संसार को प्रेम करना और समग्र मानव जाति की भलाई के लिए कार्य करना मात्र अपने देश लिए कार्य करने से महत्तर नहीं है ?

[श्री शैलेन्द्र जोशी, गवर्नमेन्ट इन्टर कॉलेज का छात्र।]

उत्तर—निश्चय ही हमें समग्र विश्व को प्यार करना चाहिए किन्तु इससे हमारी देशभक्ति के के भाव का विरोध नहीं होता है। स्वामी विवेकानन्द की देशभक्ति संकीर्ण दृष्टियुक्त नहीं थी। उन्होंने बड़े मर्माहत होकर कहा था—"जब तक मेरे देश में एक कुत्ता भी भूखा है तब तक उसे खिलाना ही मेरा सम्पूर्ण धर्म है।" किन्तु उन्होंने यह भी कहा था "मेरे लिए भारत क्या है ? मैं सारे संसार का हूं।" "पहले अपने घर में दिया जलाया जाता है।" पहले हम अपना घर ठीक करें। तभी हम दूसरे देशों के लिए कार्य करने के योग्य हो सकेंगे। समग्र विश्व के लिए कार्य करने के साथ-साथ सभी अपनी मातृभूमि को प्यार कर सकते हैं।

स्वयं संन्यासी होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द ने लोगों को भारत के लिए कार्य करने को क्यों प्रेरित किया, इसका एक अन्य महत्वपूर्ण कारण है। प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्य प्रणालियाँ हैं। प्रत्येक जाति का अपना महान् आदर्श होता है जो उसजाति का मेरुदण्डहोता

है। कोई राजनीति, कोई समाज-सुधार और कोई दूसरे विषय को अपना प्रधान आधार बनाकर कार्य करती है। स्वामी विवेकानन्द ने इस सत्य का संधान किया कि हमारे देश के लिए धर्म, एकमात्र धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। आज सारा संसार अपने को आत्म-संहार से बचाने के लिए भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता महसूस करता है।

सर्वप्रथम हमें भारत को बचाना है, केवल इसलिए नहीं कि यह हमारी मातृभूमि है वल्कि इसलिए कि यदि भारत बचता है तो सारा संसार बचता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"क्या भारत मर जायगा ? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जायगा। और उसके स्थान में कामरूपी देव और विलासितारुपी देवी राज्य करेगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वंद्विता, ये ही उनकी पूजा पद्धति होंगी और मानवात्मा उनकी बलिसामग्री हो जायगी। ऐसी दुर्घटना कभी हो नहीं सकती।"

महान इतिहासकार आर्नल्ड जे० टॉयनवी ने कहा है,…"मानव जाति की मुक्ति का एक ही मार्ग है—भारतीय मार्ग,। सम्राट अशोक और महात्मा गाँधी का अहिंसा का सिद्धान्त और श्रीरामकृष्ण का धर्म समन्वय का प्रमाण, यहाँ हमें वह मनोभाव और प्रवृत्ति मिलती है जो मानव जाति को एक साथ एक ही परिवार में विकसित करना संभव बनाती है—और इस परमाणु युग में विध्वंस से अपने को बचाने का हम लोगों के लिए यही एकमात्र विकल्प है।"

भारत का सन्देश "वसुधैव कुटुम्बकम्" (सारा विश्व एक परिवार है) का सन्देश है। वेदान्त के अनुसार—सारा विश्व एक ही समान चेतना से व्याप्त है। यह एक आध्यात्मिक जगत हैं आधुनिक विज्ञान ने भी इसे प्रमाणित किया है। आधुनिक मानव मानसिक शान्ति की तलाश में है जो वह भौतिक समृद्धि या बाहरी उपकरणों से नहीं पा रहा है। सारे संसार का मनुष्य आज उस वेदान्त के अमृत का पान करने को पिपासित है जो कहता है कि आत्मा—अमर आनन्द और अनन्त शान्ति हममें से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अवस्थित है। आत्मा की दिव्यता और विश्व की एकात्मा का वेदान्त का सन्देश आज की चरम आवश्यकता है। इसी से स्वामी विवेकानन्द की आराधना की साम्राज्ञी भारत था।

यदि हम अपनी मातृभूमि से प्रेम करने लगें तो भ्रष्टाचार जैसी समस्त समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी और हमलोग स्वामी विवेकानन्द केभारतीय आध्यात्मिकता से समग्र विश्व की विजय" के स्वप्न को साकार कर सकेंगे ताजि सारे संसार के लोग प्रसन्न रह सकें)

रामकृष्ण मिशन सेवा के सौ वर्ष

● प्रस्तुति : हृदय नारायण झा

पाश्चात्य देशों में पाँच वर्षों तक सनातन हिन्दू भावों के प्रचार-प्रसार करके स्वदेश लौटने पर स्वामी विवेकानन्द ने देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल एक विराट सेवा-संकल्प धारण किया और राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धार्मिक सामाजिक आंदोलन को मूर्त रूप देने के लिए १ मई, सन् १८९७ ई० में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। कलकत्ता स्थित बेलुड़ मठ रामकृष्ण मिशन का मुख्यालय है। आज की तारीख में रामकृष्ण मिशन की १३५ शाखाएँ मानव समुदाय की सेवा को समर्पित हैं जिसमें ३८ शाखाएँ विदेशों में हैं। लगभग १५०० संन्यासी मिशन के उद्देश्यों के प्रति समर्पित होकर सेवा कर रहे हैं। मिशन का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान सम्बन्धी क्रिया-कलाप करना है।

अपने मूल उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए मिशन ने मुख्य रूप से शिक्षा, प्रशिक्षण, शोध, चिकित्सा, राहत एवं पुनर्वास संबंधी बहुआयामी सेवा कार्यों का व्यापक अभियान चलाया। विश्व के जन मानस को स्वामी रामकृष्ण के अमर संदेश से अवगत कराते हुए अपने अभियान की अनेकों सफलताओं के साथ आज भारतवर्ष का सर्वाधिक सशक्त, समृद्ध एवं प्रगतिशील सेवा संस्थान के रूप में सौ वर्ष पूरा करके गौरवान्वित है और भारतीय संस्कृति की गौरवमयी सेवा भाव परम्परा के संरक्षण का अपने हर सम्भव क्षमता से मर्यादित रखने का प्रयास किया है।

सामान्य छात्रों के लिए उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय, गरीब छात्रों को निःशुल्क शिक्षा सुविधा प्रदान करने के लिए स्टूडेन्ट्स होम, निम्न आयवर्गीय जन सामान्य को चिकित्सा की निःशुल्क सेवा, तूफान, बाढ़ एवं भूकम्प पीड़ितों के लिए राहत एवं पुनर्वास से संबंधित अनेकों प्रकार की सेवाएँ रामकृष्ण मिशन द्वारा देश के लाखों लाख लोगों को दी जा रही है।

पटना, वाराणसी, वृंदावन, हरिद्वार, लखनऊ, इटानगर, कानपुर, देवघर, राँची, जमशेदपुर आदि स्थानों में दातव्य चिकित्सालय है जहाँ रोगियों को मुफ्त में दवा भी दी जाती है।

आज रामकृष्ण मिशन के पास सभी प्रकार की संस्थाओं की कुल संख्या लगभग २९५९ है जिनमें लगभग १,०८,२२८ छात्र, ६०,३३८ छात्राएँ विभिन्न प्रकार के शिक्षण प्रशिक्षण से लाभान्वित हो रहे हैं।

इन शैक्षणिक सेवा कार्यों पर मिशन द्वारा ४०.९९ करोड़ रुपये व्यय किये गये हैं। आज उपर्युक्त उद्धृत सभी शैक्षणिक गतिविधियाँ सुचारु रूप से चल रहीं हैं।

चिकित्सा सेवा के अन्तर्गत मिशन द्वारा कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ संचालित है। १९९५-९६ तक मिशन के लगभग १४ अस्पतालों में २०६१ शय्या की व्यवस्था की जा चुकी थी। जिनमें अब तक लगभग ७५,२८४ मरीजों को भर्ती करके चिकित्सा का लाभ प्रदान किया जा सका है। मिशन अब तक लगभग २२,८०,४६९ मरीजों को निःशुल्क चिकित्सा एवं दवा उपलब्ध कराने में सफल रही है। इसके अतिरिक्त बाहरी मरीजों के लिए समूचे देश में ९५ डिस्पेंसरी कार्यरत हैं जिसमें लगभग २७,७३,२०१ मरीजों को लाभ दिया जा सका है। स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत सुदूर ग्रामीण एवं जनजातीय, आदिवासी इलाकों में रहने वाले लोगों को समुचित चिकित्सा लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से २८ मोबाइल डिस्पेंसरी मिशन द्वारा संचालित है। अबतक लगभग ७,९९,९७८ मरीजों को मोबाइल डिस्पेंसरी के माध्यम से लाभान्वित करना संभव हो सका है।

अभी तक मिशन द्वारा १७ नेत्र शिविर लगाये गये हैं जिनमें कांटरेक्ट के लगभग १०५५ मरीजों को निःशुल्क चिकित्सा लाभ प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त कई दंत चिकित्सा शिविर भी लगाये जा चुके हैं। लगभग २३०० ऐसे मरीजों को लाभान्वित किया जा सका।

मिशन का कलकत्ता स्थित सेवा प्रतिष्ठान वर्तमान में चिकित्सा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में शोध कार्य कर रहा है। ४३ छात्र इन शोध कार्यों में संलग्न हैं। इसके अन्तर्गत सेवा सुविधा से वंचित वृद्धजनों के लिए २ पुरुषों का एवं एक महिलाओं का वृद्धाश्रम (ओल्ड एज होम) संचालित है। सेवा प्रतिष्ठान की दो शाखाएँ नयी दिल्ली एवं राँची (बिहार) में है जहाँ खासकर टी० बी० के मरीजों को निःशुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त तिरुवनन्तपुरम में मातृत्व एवं शिशु कल्याण कार्यों के लिए अस्पताल सेवारत है। इन सम्पूर्ण स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था पर मिशन द्वारा लगभग १४.९७ करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके हैं।

अपने उद्देश्यों के अनुकूल समाज में धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकासार्थ स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द के दर्शन के अतिरिक्त सनातम धर्म एवं अन्य सामान्य पाठकों की अभिरुचि के अनुकूल पुस्तकों से सुसज्जित लगभग १८० लाइब्रेरी मिशन द्वारा संचालित है। मिशन के सौजन्य से १४ भाषाओं में स्वामी विवेकानन्द साहित्य का अनुवाद एवं प्रकाशन करके सम्पूर्ण देशवासियों को मानवीय नैतिकता पर आधारित स्वामीजी के प्रेरक विचारों से अवगत कराने का प्रयास किया गया है। मिशन की ओर से १२ जर्नल प्रकाशित होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक छोटी-छोटी ज्ञानवर्द्धक पुस्तिकाओं के प्रकाशन भी मिशन की ओर से किये जाते हैं।

मिशन द्वारा समय-समय पर खासकर बाढ़, भूकम्प, तूफान, आगजनी जैसे आपदाओं से पीड़ितों के लिए राहत एवं पुनर्वास संबंधी सराहनीय प्रयास भी किये गये हैं। महाराष्ट्र के लातूर उसमानाबाद में भूकम्प त्रासदी के उजड़े ग्रामीणों को पुनर्वास सेवा प्रदान करने में मिशन की भूमिका सराहनीय रही है। मिशन द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार २२२ घर लातूर के भूकम्प पीड़ितों के लिए बनाये गये। इसके अतिरिक्त दो सामुदायिक भवन, दो विद्यालय एवं बच्चों के लिए छः पार्क बनवाये गये और उन लाभ प्राप्त कर्ताओं को सौंप दिये गये।

अपने बहुआयामी सेवा कार्यों को और भी ज्यादा प्रभावोत्पादक बनाने के उद्देश्य से हाल में कुछ नये कार्य भी मिशन द्वारा सम्पन्न किये गये हैं। १९९५-९६ में पोर्ट ब्लेयर में शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परिसर, चेन्नई में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय भवन, दिल्ली में ऑफिस कम सेल्स शो रूम, शारदापीठ बेलुड़ एवं कोयम्बटूर में ऑडिटोरियम का निर्माण। चेंगलपट्टम एवं कटिहार में विद्यालय भवन का निर्माण, वेलघड़िया कलकत्ता में इलेक्ट्रोनिक एवं टेलीकम्यूनिकेशन विभाग एवं सामुदायिक पॉलिटेकनीक भवन का निर्माण आदि अनेक नये कार्य सम्पन्न किये गये।

उपर्युक्त विवरणों के आलोक में कहा जा सकता है कि रामकृष्ण मिशन अपने सौ वर्षों के सेवाकाल में 'एकोहं वहुस्याम:' वाली उक्ति को चरितार्थ करते हुए आज अनेकानेक संस्थाओं, विभागों के साथ न सिर्फ राष्ट्रीय बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी सनानत धर्म की समृद्धि एवं सुप्रसिद्ध सेवा संस्थान के रूप में उत्तरोतर उन्नत भविष्य की ओर प्रगतिशील है।

मूल मंत्र

प्रवीण कपूर

एक बार सिन्धु सॉवीर देश का स्वामी राजा रहूगण पालकी पर चढ़कर कहीं जा रहा था। इक्षुमती नदी के किनारे पहुँचते ही, पालकी उठाने वाले कहारों के जमादार को एक और कहार की आवश्यकता पड़ी। इधर-उधर उसने नजर दौड़ायी, उसे कोई व्यक्ति दूर-दूर तक भी दिखाई नहीं दिया। पालकी नीचे उतार वह कहार की खोज में निकल गया।

संयोग से एक वृक्ष के नीचे बैठे एक व्यक्ति पर दृष्टि गई। फटेहाल दिखाई देने पर भी वह हृष्ट-पुष्ट, आभावन लग रहा था। 'यह अवश्य ही बोझा ढोने में समर्थ होगा।' ऐसा सोचकर उसने उसे पकड़कर कहारों में जोड़ दिया।

पालकी को फिर से उठाकर वे सभी कहार आगे चलने लगे। पालकी ऊँची-नीची होने लगी।

उस पर बैठे रहना राजा को मुश्किल लगने लगा। वह कभी इस ओर झुक जाता, कभी उस ओर लुढ़क जाता। अब उससे चुप नहीं रहा गया। गुस्से से बोला—'कहारो! पालकी ठीक तरह से उठाकर चलो।'

अब बेचारे कहार डर के मारे एक दूसरे का मुँह देखने लगे। न जाने राजा क्रोध में आकर क्या दंड दे दे।

तब उनमें से एक कहार ने हिम्मत बाँधकर कहा, 'राजन! इसमें हमारा कोई अपराध नहीं। यह जो नया कहार आया है, उसके कदम हमारे कदमों से नहीं मिल रहे। वह हमारी तरह जल्दी-जल्दी नहीं चल पा रहा।'

राजा क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने उस कहार को देखा 'देखने में तो मोटा-ताजा लगता है फिर क्या जान-बूझकर मेरा अनादर कर रहा है।' ऐसा विचार आते ही बोला, 'अरे! जैसे दंडयाणि यमराज जन-समुदाय को अपराधों के लिए दंड देते हैं, उसी प्रकार मैं भी तेरा इलाज किये देता हूँ। तब तेरे होश ठिकाने आ जाएँगे।'

पहले तो नया कहार चुप रहा फिर बड़े ही शांत स्वर में बोला, 'यदि भार नाम की कोई वस्तु है, तो अवश्य ढोने के लिए है। यदि कोई मार्ग है तो चलने के लिए है। सभी दिखाई देने वाले पदार्थ आदि-अंत वाले ही है। फिर मुझे तुम राजन् नवीन दंड क्या दोगे?' थोड़ा रूककर, फिर कहने लगा।

'तुम राजा हो, मैं प्रजा हूँ—यह भेद कैसा? नित्य ईश्वर की दृष्टि में तो हम सभी बराबर हैं। फिर भी यदि तुम्हें अपने स्वामी होने का अभिमान है ही तो बताओ तुम्हारी क्या सेवा करू?'

राजा ऐसी मर्म की बातें सुनकर घबरा गया। पालकी से नीचे उतर आया। नये कहार के चरणों में गिर पड़ा। 'बताइए! आप हैं कौन! आपको न पहचान पाने के कारण मुझसे जो अवज्ञ रूप अपराध हुआ है, क्षमा करें।'

'राजन्! मेरे विषय में सचमुच जानना ही चाहते हो तो सुनो। मैं वास्तव में पूर्व जन्म में भरत नामक राजा था। ईश्वर को पाने की इच्छा से लौकिक-पारलौकिक सभी कामनाओं का त्याग करने में जंगल में चला गया। वहाँ ईश्वर भक्ति में लीन रहता था।

एक दिन नदी किनारे बैठा जप कर रहा था।

तभी एक गर्भवती हिरणी प्यास से व्याकुल हो, वहाँ पानी पीने आई। अभी जल पी ही रही थी कि सिंह की भयंकर गर्जना सुनाई दी। डर के मारे उसने एकाएक नदी में छलांग लगा दी। छलांग लगाते ही बच्चा तो नदी में गिर गया और वह किसी तरह किनारे तक पहुँची भी, पर बच न पाई।

मेरा ध्यान जप से बंट चुका था। मैंने उस नवजात शावक को किसी तरह पानी से बाहर निकाला। उसकी सेवा-सुश्रुषा की। उसके जीवित रहने की व्यवस्था में ही मेरे दिन बीतने लगे। कभी उसके खाने-पीने की चिंता मुझे सताती। कभी कुत्ते-भेड़ियों से उसे बचा पाने की चिंता मुझे घेरे रहती। आखिर मेरी इस अथक देख-भाल ने उसे धीरे-धीरे सुन्दर नटखट हिरण बना ही दिया। अपने ही बेटे की तरह वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय लगने लगा।

धीरे-धीरे मेरा ध्यान प्रभु-भक्ति से हटकर उसी तक सीमित हो गया। इतने में मेरा भी अंत समय आ गया। अंतिम समय में भी ईश्वर का नाम लेने की बजाए, उसी हिरण की मोहिनी सूरत ही मेरी आँखों में घूम रही थी। मेरा मन उसे ही पुकार रहा था। मैं यही चाह रहा था कि वह जहाँ-कहीं भी हो, एक बार मेरे पास आ जाए।

उस मृग के चिंतन में शरीर छोड़ने के कारण, मुझे मृग-योनि में जाना पड़ा। अब जब इतना बड़ा राजा-तपस्वी होने पर भी अपने को हिरण के रूप में मैंने पाया तो पश्चाताप से मेरा अंतःकरण भर उठा।

मैं भागता भागता ऋषि-मुनियों के आश्रम में चला गया। वहाँ चुपचाप एक कोने में दुबका पड़ा रहता। जो रूखा-सूखा मिलता, उसी में संतुष्ट रहता। सारा दिन ऋषि मुनि जो ज्ञान-ध्यान की बातें करते, सुनता रहता। इस तरह कठोर तपस्या का जीवन बीतने लगा। इस जन्म का भी जब अंतिम काल आया तो मेरा ध्यान प्रभु चरणों में ही था। मैं मन से ईश्वर पाने की प्रार्थना कर रहा था। इसीलिए हिरण वह शरीर छूटने पर, मैं आज तुम्हारे सामने जो खड़ा हूँ, वह ब्राह्मण का शरीर है। घर-बाहर, रिश्ते-नातों का त्याग करके परमेश्वर भक्ति में लीन, एक पेड़ के नीचे बैठा था कि तुम्हारे किसी व्यक्ति ने मुझे पकड़ कर इन कहारों में पालकी उठाने के लिए जोत दिया। बल्कि कहारों की तरह मेरे भी कदम तेजी से न पड़ने का कारण सिर्फ यही है कि मैं एक-एक कदम फूंक-फूंक कर रखता हूँ। मुझे हर उस छोटे-से-छोटे प्राणि मात्र का भी ध्यान रहता है जो मेरे पाँव-तले आकर बेमौत मारा न जाए।

मेरे संस्कार किसी भी जीव-जंतु की हिंसा करने से मुझे रोकते हैं। ऐसे में राजन्! निर्णय तुम्हीं करो कि अपराध किसका है।'

राजा भला क्या निर्णय देता। वह तो भौंचक्का हो सारी बातें सुन रहा था।

अब राजा भरत जो हिरण बनने के बाद अब ब्राह्मण के रूप में सामने खड़े थे, फिर बोले—'राजन्! तुम अपने को प्रजा की रक्षा करने वाला कहते हो ना। तो बताओ, तुम्हारी पालकी को उठाने वाले कौन हैं? क्या ये तुम्हारी प्रजा नहीं? फिर इन पर तुम्हारा शासन क्यों?'

......'क्षमा करें, मुनि श्रेष्ठ!' राजा रहूगण ने विनीत स्वर में कहा। 'राजन्! मार्ग चलने वालों के लिए होता है। तुम तो स्वयं ही भार की तरह उठा कर ले जाने वाली वस्तु बने बैठे हो। भला सोचो तो, तुम किसी की रक्षा भी क्या कर सकते हो।'

राजा रहूगण की आँखें खुल गईं। उन्हें ज्ञान का मूल-मंत्र दिव्य दृष्टि मिल गई। आत्मज्ञान होते ही ग्लानि से भर गये। राजपाठ का त्याग कर, उसी ब्राह्मण के पीछे-पीछे चल दिये। शेष जीवन प्रभु के ही गुण कीर्तन में बिताया।

दो बोधकथाएं

(१)

एक कंजूस के पास बहुत धन था। उसने उसे जमीन में गाड़ रखा था। किसी प्रकार चोरों ने उसका पता लगा लिया और अवसर पाकर उसे खोद ले गए।

कंजूस ने यह देखा तो वह दहाड़ मारकर रोने लगा। पड़ोसी भी कौतूहलवश इकट्ठे हो गए। कारण विदित होने पर एक छोटे लड़के ने कहा, लालाजी वह धन न आपने किसी काम आ रहा था और न किसी के। निरर्थक पड़े रहने की अपेक्षा यदि वह चोर के काम आने लगा तो क्या हर्ज हुआ।

बच्चे की बात का हल्का-सा समर्थन खड़े हुए अन्य लोगों ने भी किया और एक बूढ़ा बोला, धन तभी तक धन है जब तक वह किसी उद्योग उपयोग में लगा रहे अन्यथा उसमें और कूड़े-करकट में क्या अन्तर ?

(२)

छोटे से गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। गरीब होने के कारण वह अपनी विद्वत्ता से धनोंपार्जन किया करता था। एक बार किसी व्यापारी ने उसकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर उसे एक अच्छी नस्ल की गाय उपहार स्वरूप दी। ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और गाय को बांधकर घर ले जाने लगा। ब्राह्मण के कुछ दूर जाने पर एक ठग की नजर गाय पर पड़ गई और वह उसे चुराने की युक्ति सोचने लगा।

वह ठग ब्राह्मण के पास धीरे से आया और झटके से गाय की रस्सी उसने अपने हाथ से खींच ली। ब्राह्मण घबराकर चिल्लाने लगा, 'चोर-चोर'। शोर सुनकर काफी लोग एकत्र हो गए और उन्होंने चोर को पकड़ लिया। पूछने पर ब्राह्मण बोला—'भाइयों, ये ठग मेरी गाय छीनकर ले जा रहा था।' तभी चोर बीच में बोल पड़ा—'नहीं, यह ब्राह्मण होकर झूठ बोल रहा है। ये गाय मेरी है, अभी-अभी खरीद कर लाया हूँ।

अब कुछ लोग ब्राह्मण के पक्ष में और कुछ चोर के पक्ष में हो गए। ब्राह्मण परेशान हो गया। कुछ सोचकर उसने तुरन्त अपने दोनों हाथों से गाय की दोनों आँखें बन्द कर लीं और ठग से पूछा—'अगर तुम सच्चे हो, तो बताओ इसकी कौन-सी आँख कानी है ? चोर घबरा गया। उसने गाय को ध्यान से देखा ही नहीं था। अतः अन्दाज से ही बोला—इसकी बायीं आँख कानी है। ब्राह्मण मुस्कराता हुआ बोला—'नहीं, तुमको पता नहीं।' इस पर चोर अकड़कर बोला—मुझे सब पता है। इसकी दाहिनी आँख कानी है।' तभी ब्राह्मण ने अपने दोनों हाथ हटाकर कहा—'देख लो भाइयों। इस गाय की दोनों आँखें ठीक हैं। एक एक भी कानी नहीं है। इतना सुनते ही चोर भीड़ को चीरता हुआ भागने लगा। पर सब लोगों ने उसे पकड़कर उसकी खूब पिटाई की और काला मुँह करके पूरे गांव में घुमाया। इसीलिए कहा जाता है—'सच्चे का बोलबाला, झूठे का मुँह काला।'

प्रस्तुति—तेसु

प्रेरक प्रसंग

हत्यारा

रवीन्द्र नाथ टैगोर अपने कमरे में बैठे कविता लिखने में व्यस्त थे। तभी छुरा लिये हुए एक गुंडा इनके कमरे में आ धमका, किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने उसे उनकी हत्या करने के लिए भेजा था।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने आँखें उठाकर उसकी तरफ देखा, सारी बातें समझ कर उन्होंने चुपचाप उसे एक कोने में पड़े स्टूल पर बैठ जाने ने लिए उंगली से इशारा करते हुए कहा, "देखते नहीं, में कितना जरूरी कार्य कर रहा हूँ।' हत्यारा सकपका गया, इतना निर्भीक व संतुलित व्यक्ति उसने कभी नहीं देखा था। वह कुछ देर तक बैठा रहा, फिर उलटे पैर चला गया।

नम्रता

अमरीकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन अपने विरोधियों के प्रति नरम रुख अपनाते थे तथा सदा उनके प्रति विनम्र रहते थे। उनको यह आदत उनके एक करीबी मित्र को पसन्द नहीं थी, एक दिन उस मित्र ने लिंकन से शिकायती लहजे में कहा, 'आप दुश्मनों से भी दोस्तों की तरह पेश आते हैं, जबकि आपको उन्हें खत्म कर देना चाहिए।'

'मैं अपने दुश्मनों को खत्म ही तो कर रहा हूँ, दोस्त बनाकर', लिंकन का मधुरता भरा जवाब था।

आशीर्वाद

एक बार महात्मा बुद्ध किसी गाँव में गये। वहाँ के लोगों ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। महात्मा ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'बिखर जाओ।' आगे एक-दूसरे गाँव में गये। वहाँ के लोगों ने उनकी उपेक्षा की। महात्मा ने आशीर्वाद दिया 'संगठित रहो।' उनके शिष्य से रहा न गया। उसने उत्सुकतावश पूछा महात्मा, जिसने आपकी उपेक्षा की उसे आपने संगठित रहने का आशीर्वाद दिया तथा जिसने आपका आदर-सत्कार किया, उसे आपने बिखर जाने को कहा। ऐसे क्यों : महात्मा ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया कि अच्छाई को मैंने बिखरने का आशीर्वाद इसलिए दिया, ताकि उसका प्रसार सभी जगह हो तथा बुराई को संगठित रहने को इसलिए कहा, ताकि वह अपने ही क्षेत्र में सिमटे रहे।

हिन्दुस्तान से साभार

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण सस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें नि:शुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एव व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

'एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अत: रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - पी.एल.पी.-१४-८१
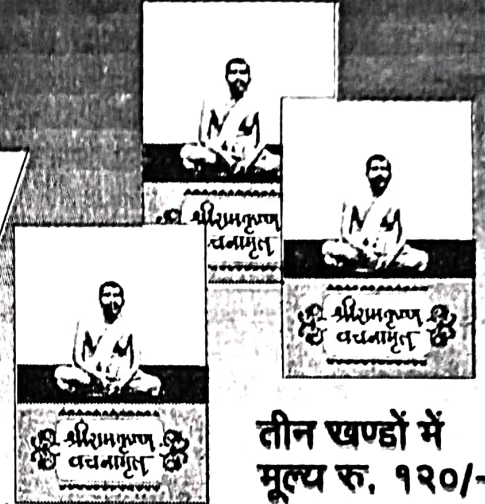
श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।